खंड III

समाज और अर्थव्यवस्था

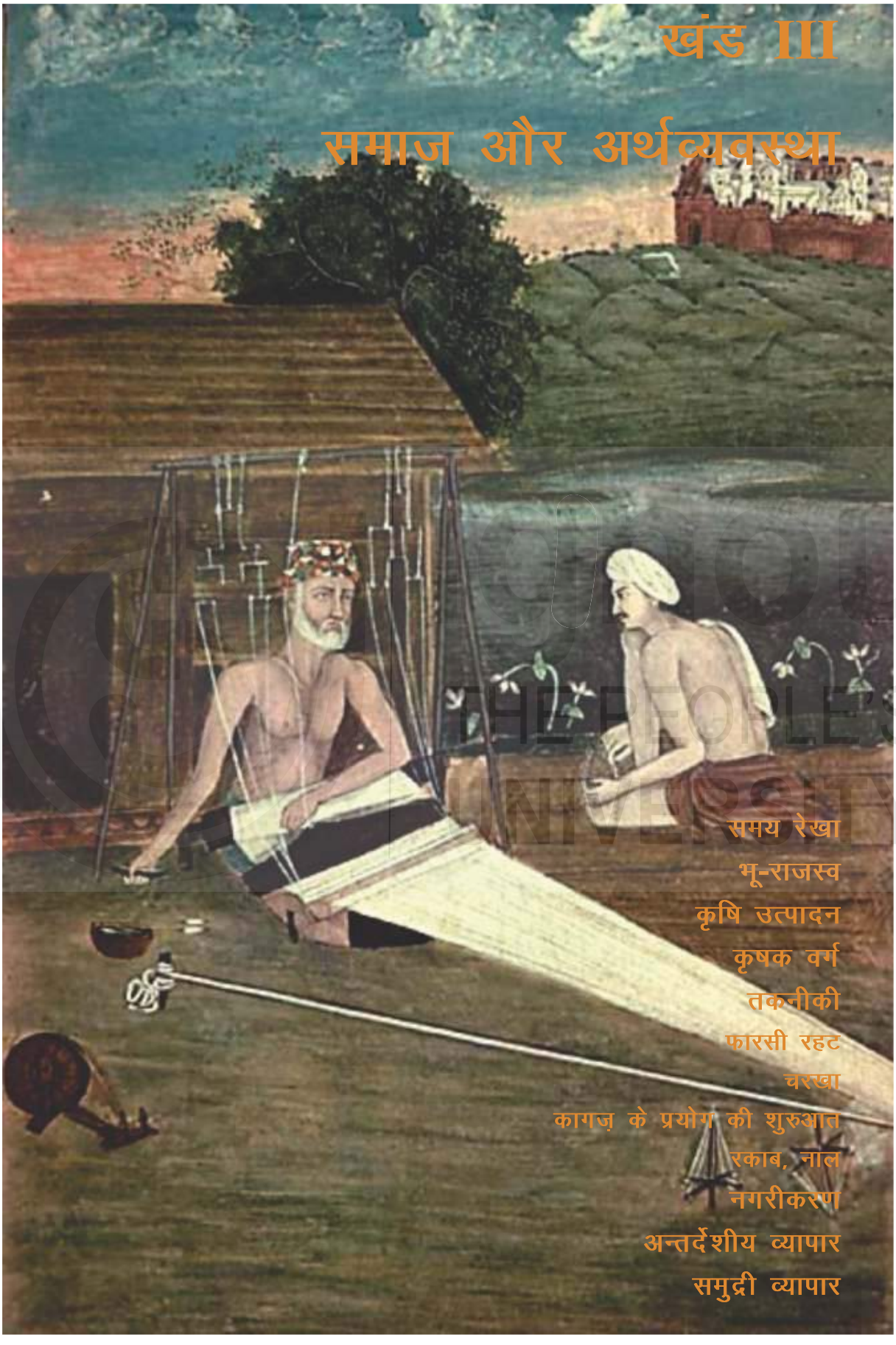

समय रेखा
भू-राजस्व
कृषि उत्पादन
कृषक वर्ग
तकनीकी
फारसी रहट
चरखा
कागज़ के प्रयोग की शुरुआत
रकाब, नाल
नगरीकरण
अन्तर्देशीय व्यापार
समुद्री व्यापार

करघे के साथ कबीर; 1825

फोटोग्राफ : अज्ञात चित्रकार

साभार : गुरदास; मई 2011; विकीमीडिया कॉमन्स

मूल स्रोत : **http://oldsite.library.upenn.edu/etext/sasia/aiis/mini-paint/company/ 004.html lzksr% https:// commons.wikimedia.org/wiki/file:kabir004.jpg**

इकाई 9 भू-राजस्व प्रशासन*

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 *खालिसा*

9.3 दिल्ली सुल्तानों के अधीन भू-राजस्व और उसकी वसूली

9.3.1 अलाउद्दीन खलजी की कृषि नीति

9.3.2 मुहम्मद तुगलक की कृषि नीति

9.4 अलाउद्दीन खलजी का बाजार नियंत्रण

9.5 दिल्ली सुल्तानों का राजस्व प्रशासन

9.6 दिल्ली सुल्तानों की मुद्रा प्रणाली

9.7 सारांश

9.8 शब्दावली

9.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

9.10 संदर्भ ग्रंथ

9.11 शैक्षणिक वीडियो

9.0 उद्देश्य

इस इकाई में गौर विजय के पश्चात् दिल्ली सल्तनत की स्थापना के फलस्वरूप भारतीय अर्थव्यवस्था पर पड़े प्रभावों का विश्लेषण किया गया है तथा सल्तनत काल में अर्थव्यवस्था में आए परिवर्तनों पर भी प्रकाश डाला गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे:

- दिल्ली सुल्तानों के अधीन भू-राजस्व की प्रकृति और उसकी वसूली की प्रणालियाँ,
- दिल्ली सुल्तानों के अधीन राजस्व स्रोतों के वितरण की पद्धति,
- अलाउद्दीन खलजी के मूल्य नियंत्रण संबंधी उपाय, और
- सल्तनत अर्थव्यवस्था में मुद्रा के बढ़ते प्रयोग और मुद्रा प्रणाली।

9.1 प्रस्तावना

गौर शासकों की उत्तर भारत पर विजय और दिल्ली सल्तनत की स्थापना के फलस्वरूप तत्कालीन राजनैतिक व्यवस्था में परिवर्तनों के साथ ही आर्थिक परिवर्तन भी हुए। विजेताओं की कर वसूली एवं वितरण और मुद्रा प्रणाली संबंधी सुस्पष्ट धारणाएँ एवं कार्य प्रणालियाँ थीं। परन्तु तत्कालीन व्यवस्थाओं को पूर्ण रूप से तत्काल परिवर्तित करना संभव नहीं था। प्रारंभ में नई धारणाओं को पुरानी व्यवस्थाओं पर अध्यारोपित किया गया, और कालांतर में 15वीं शताबदी के अंत तक विभिन्न सुल्तानों द्वारा इनमें संशोधन कर परिवर्तन किए गए।

मोहम्मद हबीब के अनुसार, दिल्ली सल्तनत की स्थापना के फलस्वरूप हुए आर्थिक परिवर्तनों ने एक ऐसी व्यवस्था को जन्म दिया जो इससे पूर्व की व्यवस्था से अधिक श्रेष्ठ थी। उनके अनुसार,

* **प्रो. शीरीन मूसवी, सेंटर ऑफ एडवांस्ड स्टडी इन हिस्ट्री, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़; और डॉ. किरण दत्तार जानकी देवी महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।**

यह इकाई हमारे पूर्ववर्ती पाठ्यक्रम ई.एच.आई.-03: *भारतः आठवीं सदी ईसवी से पंद्रहवीं सदी ईसवी तक*, खंड 5, इकाई 16 और खंड 6, इकाई 19 से ली गई है।

परिवर्तन इतने महत्वपूर्ण थे कि उन्हें 'नगरीय क्रान्ति' और 'ग्रामीण क्रान्ति' के द्वारा निर्दिष्ट किया जा सकता है। डी. डी. कोसाम्बी ने 'नई तकनीकी को ग्रहण कर उसे प्रसारित करने की दुर्बल मनोवृत्ति' को 'मुस्लिम आक्रामकों' द्वारा तोड़ने का श्रेय तो दिया, परन्तु उन्होंने परिवर्तनों को भारतीय 'सामन्तवाद' में पहले से उपस्थित सशक्त रूप से प्रभावी तत्वों से अधिक नहीं पाया।

13वीं शताब्दी के दौरान एक बड़े क्षेत्र पर सुल्तानों का नियंत्रण हो गया। प्रारंभ में, नए विजित प्रदेशों को सेनानायकों में बाँट दिया गया, जो स्वयं और अपनी सेनाओं के रख-रखाव हेतु लूट या पराजित एवं अधीनस्थ ग्रामीण अभिजात वर्ग से प्राप्त उपहारों पर निर्भर थे। पूर्व शासकों के काल के विपरीत सैनिकों को नकद वेतन मिलता था।

भूमि कर अथवा *खराज* देने से इंकार करने वाले क्षेत्रों को *मवास* कहा जाता था, जिन्हें लूटा जाता था अथवा सैनिक कार्यवाहियों द्वारा कर देने के लिए बाध्य किया जाता था। धीरे-धीरे एक साथ राजस्व वसूली और वितरण की कार्य प्रणाली स्थापित किया जाना आवश्यक हो गया।

आइए इस इकाई में दिल्ली सल्तनत कालीन आर्थिक संस्थाओं और परिवर्तनों का अध्ययन करें।

9.2 *खालिसा*

वह क्षेत्र जिसका राजस्व सीधे सुल्तान के निजी कोष के लिए वसूल किया जाता था, *खालिसा* कहलाता था। अलाउद्दीन खलजी के शासन काल में *खालिसा* क्षेत्र में काफी वृद्धि हुई। परन्तु *खालिसा* पूरे राज्य में फैले हुए क्षेत्र नहीं थे। संभवतः दिल्ली और इससे जुड़े हुए जिले तथा दोआब के भाग *खालिसा* के अंतर्गत आते थे। इल्तुतमिश के काल में तबरहिंद (भटिंडा) भी *खालिसा* के अंतर्गत था। अलाउद्दीन खलजी के अधीन संपूर्ण मध्य दोआब और रूहेलखंड के कुछ भाग *खालिसा* के अंतर्गत आ गए थे। परन्तु संभवतः फिरोज़ तुगलक के समय *खालिसा* के क्षेत्रफल में यथेष्ट कमी आई।

9.3 दिल्ली सुल्तानों के अधीन भू-राजस्व और उसकी वसूली

भारत के नए शासक इस्लामी भूमिकर *खराज* से भली-भाँति परिचित थे। *खराज* भूमि पर उत्पन्न पैदावार का हिस्सा होता था, न कि भूमि पर लगान।

13वीं शताब्दी के दौरान *खराज* ने लगभग भेंट का रूप ले लिया। इसका भुगतान एकमुश्त में, सल्तनत पूर्व शासकों के अधिपतियों द्वारा किया जाता था, जिनके साथ सल्तनत शासक वर्ग ने एक समझौता कर लिया था। दूसरी ओर, सल्तनत की आज्ञा न मानने वाले क्षेत्रों (*मवास*), जहाँ ऐसे समझौते संभव नहीं थे, में लूटमार और लड़ाई द्वारा वसूली की जाती थी। यह वसूली संभवतः मुख्यतः मवेशियों और दासों के रूप में की जाती थी।

दिल्ली सल्तनत के स्रोत ऐसे कोई संकेत नहीं देते हैं कि अलाउद्दीन खलजी (1296-1316) के शासन से पूर्व *खराज* के निर्धारण और उसकी वसूली को व्यवस्थित करने का कोई गंभीर प्रयास किया गया हो।

9.3.1 अलाउद्दीन खलजी की कृषि नीति

अलाउद्दीन खलजी का प्रयास था कि राज्य की ओर से राजस्व की माँग बढ़ाकर आमदनी को बढ़ाया जाए, सीधी वसूली करके बिचौलियों को मिलने वाले मुनाफों को समाप्त किया जाए।

आप जानते हैं कि राज्य की माँग अनाज के रूप में निर्धारित की जाती थी, परन्तु वसूली साधारणतः नकद में होती थी। बरनी से हमें ज्ञात होता है कि राजस्व संग्रह-कर्ताओं को राजस्व की वसूली इतनी कड़ाई से करने के आदेश दिए जाते थे जिससे कि किसान अपनी उपज को खेतों में ही बेचने को विवश हो जाएँ। अन्यत्र बरनी लिखता है कि अलाउद्दीन खलजी ने दोआब क्षेत्र को *खालिसा* में शामिल कर वहाँ से प्राप्त कर (***महसूल***) को सैनिकों को नकद वेतन देने में खर्च किया।

साथ ही, हमें इसी लेखक का एक विरोधीभासी कथन मिलता है कि सुल्तान ने किसानों को नकद के स्थान पर अनाज के रूप में कर अदा करने का आदेश दिया। इरफान हबीब के अनुसार, इसका संबंध *दोआब* में *खालिसा* के केवल कुछ भागों से रहा होगा। सुल्तान को अपने अन्न भंडारों के लिए वहाँ से आपूर्ति की आवश्यकता थी। अन्यथा, वसूली सामान्य तौर पर नकद में होती थी।

इस नई नीति ने ग्रामीण बिचौलियों को किस प्रकार प्रभावित किया, इसके बारे में हम **इकाई 10** में अध्ययन करेंगे।

अलाउद्दीन खलजी द्वारा प्रारंभ की गई कर प्रणाली दीर्घकाल तक जारी रही, यद्यपि ग़ियासुद्दीन तुगलक (1320-25) ने कुछ सीमा तक इसे संशोधित किया और *खोत* तथा *मुकद्दमों* को अपनी उपज और मवेशी पर कर देने से मुक्त किया। लेकिन उसने अपने किसानों पर किसी प्रकार के उप-कर (*अबवाब*) लगाने की स्वीकृति नहीं दी।

9.3.2 मुहम्मद तुगलक की कृषि नीति

प्रारंभ में मुहम्मद तुगलक ने अलाउद्दीन खलजी की भूमि की माप पर आधारित राजस्व संग्रह प्रणाली को गुजरात, मालवा, दक्खन, दक्षिण भारत और बंगाल में लागू किया। बाद में उसने कृषि कर की दर में विशेष वृद्धि कर दी। बरनी का कथन कि यह वृद्धि दस या बीस गुना अधिक थी निश्चय ही अतिशयोक्तिपूर्ण है। परन्तु इससे स्पष्ट होता है कि वृद्धि बहुत बड़ी मात्रा में की गई थी। बरनी का कहना है कि अतिरिक्त नए कर (*अबवाब*) भी लगाए गए। दूसरे करों, *खराज, चराई* और गृह-कर (*घरी*) को भी सख्ती से वसूला जाने लगा। याह्या के अनुसार मवेशियों को दागा गया और घरों की गिनती की गई, जिससे कोई कर से मुक्त न हो सके। लेकिन इन उपायों से अधिक महत्वपूर्ण बात यह थी कि *खराज* के आकलन हेतु *वफा-ए फरमानी* (राज्य द्वारा निर्धारित पैदावार) और *निरख-ए फरमानी* (राज्य द्वारा घोषित मूल्य) को आधार बनाया गया। इससे स्पष्ट अर्थ निकलता है कि राजस्व की गणना करते वक्त उपज और मूल्यों के जिन आँकड़ों का उपयोग किया गया, वे वास्तविक नहीं थे।

इससे आसानी से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उपज और मूल्यों का सरकारी निरीक्षण निश्चय ही बढ़ा कर दिया गया था। वास्तविक उपज के बजाय बढ़ी हुई उपज का प्रयोग और बाज़ार में चल रहे मूल्यों से कहीं अधिक मूल्यों के उपयोग से उत्पाद की कीमत तथा राज्य की हिस्सेदारी में वृद्धि अतिरंजनापूर्ण थी। राजस्व माँग में इस वृद्धि से जुताई योग्य भूमि कम होती गई, किसानों का पलायन हुआ और जैसा कि हम **इकाई 10** में देखेंगे, *दोआब* और दिल्ली के आसपास विशाल किसान आंदोलन हुए। इससे दिल्ली को होने वाली अनाज की आपूर्ति बंद हो गई और लगभग 7 वर्षों तक, 1335 से 1342, अकाल की चोट सहनी पड़ी।

मुहम्मद तुगलक वह पहला सुल्तान था, जिसने इन समस्याओं से जूझते हुए कृषि को बढ़ाने हेतु एक कृषि नीति को निरूपित करने का प्रयास किया। उसने जुताई योग्य भूमि के विस्तार तथा सिंचाई के लिए कुएँ खोदने जैसे कार्यों हेतु *सोनधर* नामक कृषि ऋण प्रारंभ किया। बरनी के अनुसार 1346-47 तक 70 लाख *तनका* (अफीफ के अनुसार 2 करोड़ *तनका*) *सोनधर* के तहत वितरित किए गए, परंतु किसानों को शायद ही इसका कोई अंश मिला।

कृषि को बढ़ाने के लिए *दीवान-ए अमीर-ए कोही* नामक नया मंत्रालय स्थापित किया गया। इसके दो मुख्य कार्यों में खेती योग्य भूमि में विस्तार और अनुपयोगी कृषि भूमि को सुधारने तथा बोई जाने वाली फसलों में सुधार लाना था। यह सलाह दी गई कि गेहूँ के स्थान पर गन्ना और गन्ने के स्थान पर अंगूर और खजूर की कृषि की जानी चाहिए।

सुल्तान अपनी कृषि सुधार योजना को लागू करने में इतना दृढ़ निश्चियी था कि एक धर्मशास्त्री के यह कहने पर कि नकदी में ऋण देकर अनाज के रूप में ब्याज प्राप्त करना एक पाप था, उसे फाँसी दे दी गई।

लेकिन फिर भी बरनी का मानना है कि ये सब उपाय लगभग पूर्णतः असफल सिद्ध हुए। फिरोज़ तुगलक (135-188) ने इस नीति को त्याग दिया। साथ ही कृषि संबंधी उप-करों को भी समाप्त किया और गृह-कर (*घरी*) और *चराई* कर वसूलने पर रोक लगा दी। लेकिन उसने *खराज* (भूमि कर) से भिन्न एक दूसरा कर *जज़िया* किसानों पर लगाया। उसने हरियाणा में, जहाँ उसने नहरें खुदवायीं, एक प्रकार का सिंचाई कर *(हक-ए शर्ब)* प्रारंभ किया।

बाद के काल से संबंधित बहुत कम सूचनाएँ मिलती हैं, लेकिन शासक जो भी रहे हों, भूमि कर की नकद धन के रूप में वसूली शायद इब्राहिम लोदी (1517-26) के समय तक जारी रही। मुद्रा की कमी और खाद्यान्नों के मूल्यों में गिरावट को देखते हुए उसने भू-राजस्व को वस्तु तथा अनाज के रूप में प्राप्त करने के आदेश दिए।

बोध प्रश्न-1

1) अलाउद्दीन खलजी की भू-राजस्व प्रणाली का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

2) सही और गलत वाक्यों के आगे (✓) अथवा (×) का चिह्न लगाइएः

क) वे क्षेत्र जो बिना बल प्रयोग के *खराज* अदा नहीं करते थे, *मवास* कहलाते थे। ( )

ख) ग़ियासुद्दीन तुगलक ने *खोतों* और *मुकद्दमों* की फसलों और मवेशियों पर कर लगाया। ( )

ग) इब्राहिम लोदी ने राजस्व वसूली नकद धन के रूप में करने का आदेश दिया। ( )

9.4 अलाउद्दीन खलजी का बाज़ार नियंत्रण

अलाउद्दीन खलजी की नीतियों ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था तक ही सीमित न रहकर नगरीय बाज़ार व्यवस्था को भी प्रभावित किया। उसे उन सात अधिनियमों को जारी करने का श्रेय दिया जाता है, जो बाज़ार नियंत्रण उपायों के रूप में जाने जाते हैं। बरनी, जो इस संबंध में हमारा मुख्य स्रोत है, ही केवल ऐसा प्रमाण है जिससे इन अधिनियमों के बारे में विस्तार से जानकारी प्राप्त होती है।

सुल्तान ने सभी वस्तुओं, खाद्यान्नों से लेकर वस्त्रों, दासों, मवेशियों इत्यादि (**अधिनियम 1**) की कीमतों को निर्धारित किया। अपने उपायों को सफल बनाने के उद्देश्य से सुल्तान ने इन कीमतों को बलपूर्वक लागू करने की पूरी व्यवस्था की। एक बाज़ार नियंत्रक (*शहना-ए मण्डी*), *बरीदों* (खुफिया अधिकारी) और *मुनहियानों* (गुप्तचरों) की नियुक्ति की गई (**अधिनियम 2**)। खाद्यान्न व्यापारियों को *शहना-ए मंडी* के नियंत्रण में रखा गया और उनसे जमानत ली गई (**अधिनियम 4**)। सुल्तान स्वयं प्रतिदिन इन तीनों स्रोतों से अलग-अलग जानकारी प्राप्त किया करता था (**अधिनियम 7**)। जमाखोरी (*इहतिकार*) पर प्रतिबंध था (**अधिनियम 5**)। बाज़ार में सख्त नियंत्रण सुनिश्चित करते हुए भी सुल्तान ने जरूरी आवश्यकताओं जैसे अनाजों और अन्य वस्तुओं की कम दरों पर नियमित आपूर्ति को नज़रअंदाज नहीं किया।

सल्तनत काल में तत्कालीन स्रोतों में वर्णित कुछ वस्तुओं का मूल्य
(मूल्यः *जीतल* प्रति मन)

नं.	सामग्री	अलाउद्दीन खलजी	मुहम्मद तुगलक	फिरोज़ तुगलक
1	गेहूँ	7	12	8
2	जौ	4	8	4
3	धान	5	14	–
4	दालें	5	–	4
5	मोठ	3	4	4
6	शक्कर (सफेद)	100	80	–
7	शक्कर (खांड)	60	64	120-140
8	भेड़ का गोश्त	10-12	64	–
9	घी	16	–	100

मूल्य-सूची के. एम. अशरफ की पुस्तक, *लाइफ एण्ड कंडीशन्स आफ द पीपुल आफ हिन्दुस्तान*, दिल्ली, 1970, पृ. 160 से ली गई है। विभिन्न स्रोतों के आधार पर तैयार की गई इस मूल्य-सूची से स्पष्ट है कि मुहम्मद तुगलक के शासनकाल में कीमतें बढ़ीं तथा पुनः फिरोज़ तुगलक के शासनकाल में वे अलाउद्दीन खलजी के काल में प्रचलित मूल्य-स्तर पर पहुँच गईं।

यह बात स्पष्ट है कि बाज़ारों में खाद्यान्न व्यापारी उसी अवस्था में आपूर्ति कर सकते थे, यदि उन्हें सस्ती दरों पर खाद्यान्न उपलब्ध होते। प्रकटतः इसी कारण सुल्तान ने *दोआब* में भू-राजस्व को इतनी सख्ती से वसूलने का आदेश दिया कि किसान खेतों के निकट ही अपनी पैदावार *कारवानियों* (खाद्यान्न व्यापारियों) को बेचने को मजबूर हो गए (**अधिनियम 6**)।

सुल्तान ने दिल्ली और राजस्थान में झाइन नामक स्थान पर अन्न भंडार गृहों की स्थापना की। *दोआब* की *खालिसा* भूमि से भूमि कर वस्तुओं के रूप में वसूल किया गया। यह अनाज राज्य के अन्न भंडार गृहों में जमा होता था (**अधिनियम 3**)। मुल्तानी वस्त्र व्यापारियों को वस्त्र खरीदने और बाज़ार में लाने हेतु 20 लाख *तनका* का अंग्रिम ऋण दिया गया।

इस संदर्भ में सभी स्रोतों से यह ज्ञात होता है कि सुल्तान को मूल्यों को कम रखने और बाज़ार में वस्तुओं की प्रचुर आपूर्ति जारी रखने में सफलता प्राप्त हुई। परन्तु इस बात को लेकर विभिन्न मत हैं कि सुल्तान द्वारा बाजार नियंत्रण क्यों लागू किया गया और किसी किस क्षेत्र में इसको लागू किया गया। दरबारी कवि अमीर खुसरो ने इन उपायों को अतिशय उदारतापूर्ण तथा साधारण जनता के सुख-चैन व कल्याण हेतु बताया है। चिश्ती संत नसीरूद्दीन महमूद (*चिराग-ए दिल्ली*) ने इसे सुल्तान द्वारा सभी की भलाई के लिए किया गया प्रयास बताया है। परन्तु इतिहासकार बरनी का मत बिल्कुल भिन्न है। इसके लिए वह सुल्तान की परोपकारी भावनाओं को श्रेय न देकर ठोस वित्तीय कारण बताता है। सुल्तान मंगोल आक्रमण से सुरक्षा हेतु एक बड़ी सेना के निर्माण हेतु चिन्तित था और सामरिक महत्व के स्थानों पर किलों का निर्माण कर तथा दिल्ली के चारों ओर दीवार खड़ी करके किलेबंदी करना चाहता था। यदि अतिरिक्त घुड़सवारों और सैनिकों को तत्कालीन वेतनमानों पर नियुक्त किया जाता तो राजकोष पूर्ण रूप से खाली हो जाता। वेतनमानों में कमी उसी अवस्था में की जा सकती थी यदि कीमतों को पर्याप्त रूप से कम स्तर तक रखा जाता।

बरनी के ये विचार अधिक तर्कसंगत प्रतीत होते हैं। चूँकि मुख्य *लश्करगाह* (सैनिक छावनी) दिल्ली में थी और अधिकांश शाही सैनिक दिल्ली और उसके आसपास तैनात थे, बाज़ार नियंत्रण का प्रमुख केन्द्र स्वयं दिल्ली ही था। तथापि, चूँकि *दोआब* के आसपास के क्षेत्रों के द्वारा खाद्यान्नों की सस्ते दरों पर आपूर्ति अनाज के व्यापारियों को प्राप्त होती थी, उन स्थानों में भी कीमतों की कम दरें प्रचलित थीं।

बाज़ार नियंत्रण लंबे समय तक जारी नहीं रहा और अलाउद्दीन खलजी के शासनकाल के बाद हमें इसके बारे में सूचना नहीं मिलती है। मूल्य नियंत्रण में सफलता प्राप्त करने के लिए एक अत्यन्त कार्य-कुशल और चौकन्ने प्रशासन की जरूरत थी। अतएव, इसके जारी न रहने का एक संभाव्य कारण पर्याप्त रूप से योग्य प्रशासन की कमी होना रहा होगा। परन्तु, इरफान हबीब, अलाउद्दीन खलजी के उत्तराधिकारी द्वारा मूल्य नियंत्रण की नीति को त्यागने के लिए एक भिन्न मत प्रकट करते हैं। चूँकि, कम कीमतों के प्रचलन का अर्थ उन क्षेत्रों में कम राजस्व प्राप्ति था, मूल्य नियंत्रण कम कीमतों वाले क्षेत्र के सीमित होने तक ही व्यावहारिक था और अधिकांश व्यय भी वहीं केन्द्रित था। मंगोलों के खतरे के टलते ही सेना और व्यय को, दिल्ली और उसके आसपास ही केन्द्रित न कर, उसका विकेंद्रीकरण करना आवश्यक हो गया। अतः अब राज्य कोषागार का हित मूल्य नियंत्रण को समाप्त करने में था।

बोध प्रश्न-2

1) अलाउद्दीन खलजी द्वारा 'मूल्य नियंत्रण' लागू करने के हेतु किए गए उपायों का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

2) संक्षेप में इनके कारण बताइए।

अ) 'मूल्य नियंत्रण' लागू करने के विषय में बरनी के विचारः

.....

.....

.....

ब) अलाउद्दीन खलजी के उत्तराधिकारियों के काल में मूल्य नियंत्रण समाप्त करना:

.....

.....

.....

9.5 दिल्ली सुल्तानों का राजस्व प्रशासन

तेरहवीं शताब्दी में राजस्व व्यवस्था किस प्रकार की थी? इसके विषय में बहुत स्पष्ट जानकारी हमारे पास नहीं है। यहाँ तक कि इलबरी शासन में भूमि-कर की सही दर के विषय में भी ज्ञात नहीं है। संभवतः पुरानी कृषि और भूमि-कर व्यवस्था ही जारी रही। प्रमुख अंतर यह था कि केन्द्र में भूमि के अधिशेष उत्पादन पर अधिकार करने वाला वर्ग बदल गया। अर्थात पुराने शासक-वर्ग के स्थान पर अब तुर्की शासक-वर्ग भू-राजस्व प्राप्त करने लगा। इस व्यवस्था के विषय में कुछ अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए हम इतिहासकार बरनी के विवरण (जो अलाउद्दीन खलजी के शासन के प्रारंभिक वर्षों का विवरण है) का विश्लेषण कर सकते हैं। संक्षेप में बरनी हमें तीन ग्रामीण-अभिजात या उच्च वर्गों के विषय में बताता है। यह वर्ग हैं: *खोत, मुकद्दम* और *चौधरी* जो राज्य की ओर से किसानों से भूमि-कर, या *खराज* वसूल करते थे। यह लोग किसानों से कर वसूल करके *दीवान-ए विज़ारत* के अधिकारियों के पास जमा कर देते थे। इस कार्य के बदले में अपने पारिश्रमिक के रूप में उन्हें कर वसूली का एक भाग प्राप्त करने का अधिकार था, जिसे *हक्क-ए खोती* या *खोती* का अधिकार कहते थे। यह राशि उन्हें नकद रूप में नहीं मिलती थी, बल्कि कर-मुक्त भूमि के रूप में मिलती थी अर्थात् भूमि के एक भाग का कर वह स्वयं अपने पास रख सकते थे। इसके अतिरिक्त यह किसानों से भी उनकी उपज का कुछ भाग अलग से लेते थे, जिसे बरनी *किस्मत-ए खोती* कहता है। भूमि-कर के अतिरिक्त प्रत्येक कृषक को गृह-कर (*घरी*) और पशु या चरागाह कर *(चराई)* भी देना होता था। यह भी संभव है कि शायद *चौधरी* सीधे कर इकट्ठा करने की व्यवस्था से जुड़ा हुआ नहीं था, क्योंकि इब्न बतूता के अनुसार, *चौधरी* 'सौ गाँवों' *(परगने)* का प्रमुख होता था। इस अनुमान को और अधिक बल इस तथ्य से मिलता है कि बरनी हमेशा *हक्क-ए खोती* या *मुकद्दमी* जैसे शब्दों का प्रयोग करता है, *हक्क-ए चौधरी* की बात कहीं नहीं करता। इतिहासकार डब्ल्यू. एच. मोरलैण्ड इन तीनों वर्गों के लिए मध्यस्थ-वर्ग (intermediaries) जैसे शब्द का प्रयोग करते हैं। हम भी इस इकाई में इन वर्गों को मध्यस्थ-वर्ग ही कहेंगे।

अलाउद्दीन खलजी ने इस मध्यस्थ-वर्ग का दमन क्यों किया? बरनी ने अलाउद्दीन के इस कार्य के लिए उत्तरदायी कारणों का विस्तार से वर्णन किया है (देखिए **भाग 10.3.2**)। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि मध्यस्थ-वर्ग हमेशा विद्रोह के लिए तैयार एक असाध्य वर्ग हो गया था। सुल्तान ने उनके विरुद्ध निम्न प्रमुख आरोप लगाए:

क) मध्यस्थ-वर्ग अपनी भूमि के उस भाग पर कर नहीं देते थे जो कर-मुक्त नहीं थी, बल्कि वे अपने कर का 'बोझ' किसानों पर डाल देते थे अर्थात् अपना कर अदा करने के लिए वे किसानों से राज्य द्वारा निर्धारित दर से अधिक राजस्व वसूल करते थे।

ख) वे *चराई* कर नहीं देते।

ग) गलत तरीकों से प्राप्त 'अत्यधिक दौलत' ने उन्हें इतना घमण्डी बना दिया था कि वे राजस्व अधिकारियों के आदेशों का पालन नहीं करते थे और जब उन्हें हिसाब देने के लिए राजस्व कार्यालय में बुलाया जाता, तो वे नहीं जाते।

इन परिस्थितियों में सुल्तान को आर्थिक और राजनीतिक कारणों से उनकी आय के साधनों पर प्रहार करना पड़ा। इसके लिए सुल्तान ने जो कदम उठाए वह निम्न थे:

i) राज्य की ओर से राजस्व-दर कुल उपज के आधे के बराबर निश्चित की गई अर्थात् उपज का आधा भाग राज्य कर के रूप में लेगा। भूमि की नाप (*मसाहत*) की गई और उसकी प्रत्येक इकाई पर कर निश्चित किया गया। इसके लिए *वफा-ए बिस्वा* शब्द प्रयोग किया गया (*वफा*=उपज; *बिस्वा*=बीघे का 1/20वाँ भाग)। संभवतः प्रत्येक किसान की भूमि पर पृथक-पृथक कर निर्धारित किया गया।

ii) किसानों और मध्यस्थों पर कर की दर समान रखी गई (50 प्रतिशत)। इसमें कोई भेद नहीं किया गया, चाहे वे मध्यस्थ हों या 'सामान्य किसान' (*बलाहार*)।

iii) मध्यस्थों के अनुलाभ (perquisites) समाप्त कर दिए गए।

iv) मध्यस्थों से भी गृह कर और *चराई* कर वसूल किया गया।

इससे यह स्पष्ट है कि इन आदेशों का एक उद्देश्य किसानों को मध्यस्थों की अवैधानिक वसूली से बचाना था। बरनी का कथन भी यही है कि सुल्तान की नीति का उद्देश्य यह था कि 'शक्तिशाली' (*अक़विया*) का **'बोझ'** (*बार*) 'कमजोर' (*ज़ुआजा*) पर नहीं पड़ना चाहिए। हम यह जानते हैं कि राज्य द्वारा उपज के 50 प्रतिशत की माँग भारत के भू-राजस्व के इतिहास में सर्वाधिक है। एक ओर, जहाँ किसान अब मध्यस्थों के अत्याचार से बच सके, वहीं अब उन्हें पहले की अपेक्षा कर भी अधिक देना पड़ा। चूँकि कर की दर सब लोगों के लिए समान थी, इसलिए यह प्रतिगामी (regressive) कर था (अर्थात् अधिक गरीब के लिए कर का बोझ अधिक और कष्टदायी)। इस प्रकार, राज्य ने तो मध्यस्थों का नुकसान करके अपनी आय बढ़ा ली, परन्तु किसानों को कोई लाभ नहीं हुआ। उनकी स्थिति उसी प्रकार दयनीय ही रही।

ऐसे किसान जो गरीब थे और जिनके पास कोई संसाधन नहीं थे पूरी तरह कुचल दिए गए तथा अमीर किसान जिनके पास संसाधन थे, विद्रोही हो गए। पूरे इलाके बर्बाद हो गए। खेती पूरी तरह खत्म हो गई। जब दूर के क्षेत्र में *दोआब* के किसानों की बर्बादी की खबरें पहुँची तो वहाँ के किसान भी खेतों को छोड़कर जंगलों की ओर भागने लगे। उन्हें भय था कि *दोआब* में जारी दमनकारी आदेश उनके क्षेत्रों में लागू किए जाएंगे। सुल्तान जिन दो वर्षों में (लगभग 1332-34) दिल्ली रहा उस काल में सख्ती के साथ राजस्व की मांग और अनेक प्रकार के अतिरिक्त करों (*अबवाब*) की बहुतायत से *दोआब* बर्बाद हो गया। 'हिन्दुओं' ने अनाज के ढेरों में आग लगा कर जला दिया और अपने घरों से जानवरों को भगा दिया। सुल्तान ने *शिकदारों* और *फौजदारों* (राजस्व संग्राहक और सैनिक प्रमुख) को आदेश दिया कि पूरे क्षेत्र को उजाड़ दें और लूटमार करें। उन्होंने बहुत से *खोत* और *मुकद्दमों* को मार डाला और बहुतों को अंधा कर दिया। जो बच निकले उन्होंने अपने गिरोह बना लिए और जंगलों की ओर भाग गए। पूरा क्षेत्र बर्बाद हो गया। उन्हीं दिनों सुल्तान शिकार खेलने बरन (आधुनिक बुलंदशहर) गया। उसने आदेश दिया कि बरन के संपूर्ण क्षेत्र को लूट कर उजाड़ दिया जाए। सुल्तान ने कन्नौज से लेकर दलमऊ तक के संपूर्ण क्षेत्र में स्वयं लूटमार की और उजाड़ दिया। जो भी पकड़ा गया, मार डाला गया। अधिकांश (किसान) भाग गए और जंगलों में शरण ली। उन्होंने (सुल्तान की सेना ने) जंगलों को घेर लिया और जंगल में जो भी मिला उसे मार डाला।

मुहम्मद तुगलक के शासन काल में किसानों के उत्पीड़न का इतिहासकार बरनी द्वारा वर्णन। अंग्रेजी प्रारूप के लिए देखें, *द कैम्ब्रिज इकॉनामिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया,* संपा. तपन रेचौधरी एवं इरफान हबीब, लंदन, 1982, भाग I, पृ. 64

यह सही है कि अब मध्यस्थों के हाथ से सीधे कर वसूलने का कार्य ले लिया गया लेकिन अब भी उनसे यह आशा की जाती थी कि अपने क्षेत्र में वे कानून और व्यवस्था बनाए रखेंगे तथा बिना किसी पारिश्रमिक के राजस्व अधिकारियों की सहायता करेंगे। राज्य द्वारा किसानों से सीधे सम्पर्क स्थापित किए जाने से राजस्व अधिकारियों की संख्या बहुत बढ़ गई। यह अधिकारी विभिन्न नामों से जाने जाते थे, जैसे ***उम्माल***, *मुतसर्रिफ, मुशरिफ, मुहासिलान, नवीसिन्दगान,* आदि। कुछ ही समय बाद मध्यस्थों में भ्रष्टाचार बहुत बढ़ गया जिसके लिए *नायब वज़ीर* शरफ कैनी ने उन्हें कठोरता से दण्डित किया: आठ से दस हजार तक अधिकारी जेल में डाले गए। धोखाधड़ी पकड़ने की प्रक्रिया बहुत सरल थी। लेखा परीक्षक गाँव के *पटवारी* की ***बही*** या खाते की सूक्ष्मता से जाँच करते थे। किसानों द्वारा राजस्व अधिकारियों को किए गए प्रत्येक वैधानिक या अवैधानिक भुगतान का विवरण *बही* में रहता था। इन भुगतानों की तुलना वसूली की प्राप्ति से की जाती थी और भ्रष्टाचार पकड़ा जा सकता था। अलाउद्दीन खलजी ने कर वसूलने वालों के वेतन बढ़ा दिए थे, फिर भी भ्रष्टाचार जारी रहा।

ये नए नियम जिस क्षेत्र में लागू किए गए थे, बरनी उनकी ओर भी संकेत करता है। राज्य के केन्द्र को शामिल करते हुए यह एक विस्तृत क्षेत्र में लागू थे। परन्तु मालवा तथा राजस्थान के कुछ क्षेत्र

और बिहार, अवध तथा गुजरात इसमें सम्मिलित नहीं थे। इस विषय में यह तथ्य ध्यान में रखना आवश्यक है कि यह नियम केवल *ख़ालिसा* ('शाही' अथवा 'सुरक्षित' भूमि) के लिए ही थे।

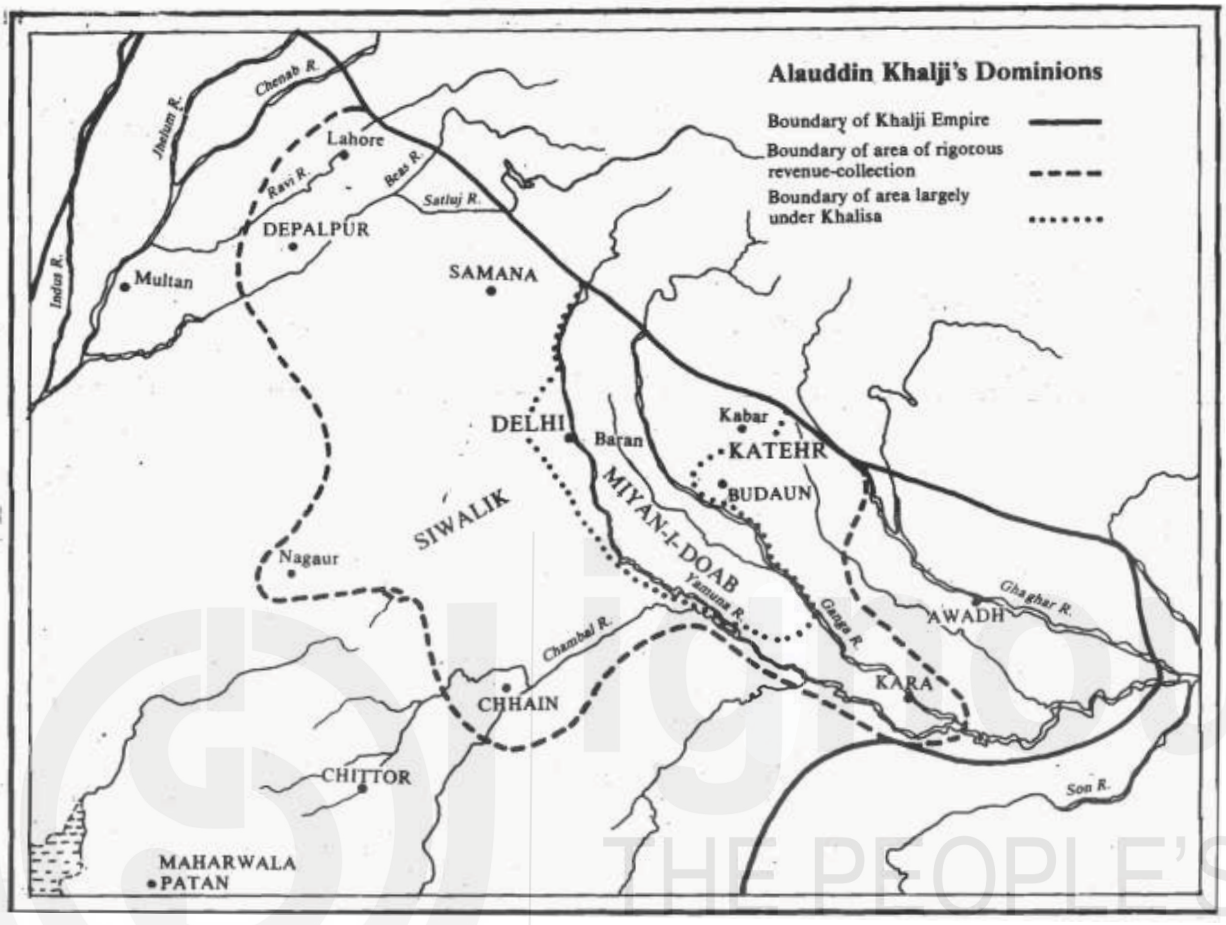

मानचित्र 9.1: अलाउद्दीन खलजी के साम्राज्य में कठोर राजस्व वसूली का क्षेत्र

साभार: फैज़ हबीब, सेंटर ऑफ एडवांस्ड स्टडी इन हिस्ट्री, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़

भुगतान की प्रणाली एक अन्य महत्वपूर्ण प्रश्न है। मोरलैण्ड का विचार है कि तेरहवीं शताब्दी में नकद वसूली की प्रथा सामान्यतः प्रचलित थी और चौदहवीं शताब्दी तक इसका काफी विस्तार हो गया था। परन्तु अलाउद्दीन ने अनाज के रूप में वसूली को वरीयता प्रदान की। उसने आदेश दिया कि *दोआब* की सम्पूर्ण *खालिसा* भूमि से वसूली अनाज के रूप में ही की जाए और दिल्ली तथा उसके आसपास के क्षेत्र से केवल आधा राजस्व नकद रूप में वसूला जाए (शेष आधा अनाज के रूप में)। उसके द्वारा अनाज के रूप में वसूली को वरीयता देने का कारण दिल्ली और अन्य क्षेत्रों में अनाज का भण्डारण था जिससे आपात स्थिति (जैसे सूखा पड़ने या अन्य कारण से अनाज की कमी होने पर) में संग्रहित अनाज का उपयोग हो सके। साथ ही, एक अन्य उद्देश्य यह था कि इस संग्रहित अनाज की सहायता से वह अनाज मण्डी में अपनी कीमतों को स्थिर करने की नीति को सफल बना सकता था।

ग़ियासउद्दीन तुगलक द्वारा दो महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गए:

(i) मध्यस्थ वर्ग को *हक्क-ए खोती* का अधिकार वापस दे दिया गया। (परन्तु *किस्मत-ए खोती* का अधिकार नहीं दिया गया) उन्हें गृह कर और *चराई* कर से भी मुक्ति दे दी गई;

(ii) भूमि को नापने की व्यवस्था (*मसाहत*) तो जारी रखी गई, परन्तु साथ ही अवलोकन या 'वास्तविक उपज' (*बर हुक्म हासिल*) के आधार पर भी कर का निर्धारण जारी रखा।

मुहम्मद तुगलक के कार्यों को लेकर कुछ अनिश्चितता है कि उसने भूमि कर की दर 50 प्रतिशत से भी अधिक बढ़ा दी थी। यह भी कहा जाता है कि अलाउद्दीन की मृत्यु के बाद उसके

उत्तराधिकारियों ने कर की दर घटा दी थी जिसे मुहम्मद तुगलक ने फिर 50 प्रतिशत कर दिया। यह दोनों दृष्टिकोण गलत प्रतीत होते हैं: अलाउद्दीन द्वारा निर्धारित की गई दर में कभी कोई फेर-बदल नहीं हुआ। वास्तव में, मुहम्मद तुगलक ने कुछ नए कर (*अबवाब*) लगाए और साथ ही पुरानों को फिर जारी किया (उदाहरण के लिए, मध्यस्थों पर फिर *चराई* और गृह कर (*घरी*) लागू किए)। इसके अतिरिक्त, ऐसा भी प्रतीत होता है कि कर निर्धारित करने के लिए सिर्फ भूमि को नापने की प्रथा अपनाई गई। स्थिति उस समय अधिक बिगड़ी जब अनाज के रूप में वसूली 'वास्तविक उत्पादन' के आधार पर न करके सम्पूर्ण नापी गई भूमि में राज्य द्वारा निर्धारित उपज (*वफा-ए फरमानी*) के आधार पर की गई। साथ ही, नकद रूप में वसूली करने के लिए भी बाजार में अनाज के प्रचलित मूल्यों को आधार नहीं बनाया गया। बल्कि 'सुल्तान द्वारा निर्धारित मूल्य' (*निरख-ए फरमानी*) को आधार माना गया। इस सबके ऊपर, जैसा कि बरनी कहता है, इन सभी करों को अत्यन्त कठोरता से वसूल करने की कोशिश की गई। इन नियमों को *दोआब* की सम्पूर्ण *ख़ालिसा* भूमि पर लागू किया गया। परिणाम प्रत्यक्ष थे कि मध्यस्थों के नेतृत्व में किसानों का अभूतपूर्व विद्रोह, जिसने खूनी संघर्ष को जन्म दिया। बाद में फिरोज़ शाह तुगलक ने लगभग तेईस प्रकार के उप-कर या *अबवाब* समाप्त किए जिसमें *चराई* और *घरी* (गृह-कर) भी शामिल थे।

राजस्व को ठेके पर देने की प्रथा एक अन्य प्रमुख कदम था जो विशेषकर तुगलक काल में अपनाया गया। इस व्यवस्था के अनुसार, कुछ क्षेत्रों में राजस्व वसूल करने का उत्तरदायित्व ठेकेदारों को दे दिया गया। ठेकेदार संभवतः कुल राशि अग्रिम रूप में देकर किसी क्षेत्र में एक निश्चित समय के लिए कर इकट्ठा करने का अधिकार प्राप्त कर लेते थे। फिरोज़ शाह के काल में एक 'सिंचाई कर' *(हक-ए शर्ब)* भी उन लोगों पर लगाया गया जो राज्य द्वारा निर्मित नहरों से सिंचाई के लिए पानी लेते थे। यहाँ हम आपको यह भी बताना चाहेंगे कि जब फसल खराब हो जाती थी तब राज्य द्वारा भूमि-कर में छूट, आदि दी जाती थी। मुहम्मद तुगलक के काल में किसानों को कृषि ऋण *सोनधर* भी दिया जाता था।

प्रश्न यह उठता है कि दिल्ली सुल्तानों के काल में राज्य का अनुमानित राजस्व कितना था? अभी तक फिरोज़ तुगलक से पहले के काल के विषय में ऐसा कोई भी अनुमान प्रस्तुत नहीं किया गया है। समकालीन इतिहासकार अफीफ के अनुसार सुल्तान (फिरोज़ शाह) के आदेश पर ख्वाजा हिसामउद्दीन जुनैद ने राज्य की *जमा* (अनुमानित आय) 'जाँच के नियम' (*बर हुक्म मुशाहदा*) के आधार पर निर्धारित की। इस कार्य को पूरा करने में छः साल लगे। इस गणना के अनुसार, राज्य की आय लगभग 6 करोड़ 75 लाख *तनका* (एक चाँदी का सिक्का) आँकी गई। सुल्तान (फिरोज़ शाह तुगलक) के सम्पूर्ण शासन काल में राज्य की यही आय मान्य रही।

बोध प्रश्न-3

1) मध्यस्थ वर्गों को हटाने के लिए अलाउद्दीन खलजी ने क्या प्रयत्न किए?

.....

.....

.....

2) निम्न की परिभाषा दीजिए:

i) *खालिसा* .....

.....

.....

ii) *ख़राज* .....

.....

.....

iii) *अबवाब* .....

.....

.....

iv) *सोनधर* .....

.....

.....

9.6 दिल्ली सुल्तानों की मुद्रा प्रणाली

दिल्ली सल्तनत की स्थापना के साथ ही मुद्रा अर्थव्यवस्था में बहुत वृद्धि हुई, जो विशेष रूप से 14वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में बढ़ी। चूँकि, मुद्रा अर्थव्यवस्था में प्रगति का अर्थ सरल शब्दों में, लेन-देन या व्यापार में मुद्रा के अधिक प्रयोग से है (इसे मुद्रीकरण भी कहा जाता है), दिल्ली सल्तनत की स्थापना के उपरांत बड़ी मात्रा में सोने, चाँदी और ताँबे के सिक्कों को जारी करना, इसी भारतीय अर्थव्यवस्था के मुद्रीकरण की एक सहवर्ती प्रक्रिया थी।

दिल्ली सल्तनत की स्थापना से पूर्व काल में सिक्कों, विशेष रूप से शुद्ध चाँदी के सिक्कों, की कमी रहती थी। प्रारंभिक गौरी विजेताओं ने टकसालों को अत्यन्त कम मात्रा में चाँदी-युक्त ताँबे के सिक्कों को जारी करते पाया। प्रारंभ में, मुद्रित किए जाने वाले सिक्कों की संख्या को बढ़ाने के अतिरिक्त कोई परिवर्तन नहीं किए गए। सिक्कों पर देवी लक्ष्मी या बैल-और-घुड़सवार, इत्यादि की प्रतिकृतियों का अंकन जारी रहा। केवल इसके ऊपर एक अशुद्ध रूप में नए शासक का नाम नागरी लिपि में उत्कीर्ण किया जाने लगा। इन सिक्कों को *देहलीवाल* कहा जाता था।

इल्तुतमिश (1210-36) को दिल्ली सल्तनत की मुद्रा के मानकीकरण का श्रेय दिया जाता है। उसके द्वारा स्थापित मुद्रा प्रणाली अपने सारभूत रूप में दिल्ली सल्तनत के काल में जारी रही। उसने सोने व चाँदी के *तनका* और ताँबे के *जीतल* सिक्के जारी किए। *जीतल* की संगणना उत्तर भारत में एक *तनका* के 1/48वें भाग से और देवगिरि की विजय के पश्चात् दक्खन में 1/50वें भाग से की जाती थी।

सोने व चाँदी के मध्य 1:10 का एक निश्चित अनुपात स्थापित कर दिया गया था।

मुद्रा प्रणाली के अध्ययन हेतु ऐतिहासिक साक्ष्य ही नहीं वरन् अभी भी उपलब्ध सिक्कों के रूप में भौतिक प्रमाण (इन्हें मुद्रा-विषयक प्रमाण कहते हैं) भी मौजूद हैं।

सल्तनत टकसालों द्वारा सामान्य तौर पर तीन धातुओं के सिक्के जारी किए जाते थेः सोना, चाँदी और बिलन (चाँदी की सूक्ष्म मात्रा युक्त ताँबा)। मुख्य सिक्के *तनका* और *जीतल* होते थे, परन्तु कुछ छोटी मुद्राएं भी प्रचलन में थीं। बरनी *दांग* और *दिरम* का वर्णन करता है जो राजधानी दिल्ली में प्रचलित थे। उत्तर भारत में निम्नलिखित मुद्राओं के मध्य समीकरण इस प्रकार थाः

1 चाँदी *तनका* = 48 *जीतल* = 192 *दाँग* = 490 *दिरम*

बंगाल द्वारा प्रेषित सोना व चाँदी, 13वीं शताब्दी के दौरान सिक्कों की ढलाई का मुख्य स्रोत था। उत्तर भारत और बाद में दक्खन के खजानों पर कब्जा, सोने व चांदी के सिक्कों की ढलाई में बहुत सहायक रहा।

सल्तनत की टकसालों ने न केवल सरकारी कोष के लिए सिक्के जारी किए बल्कि निजी व्यापारियों द्वारा लाए गए सोने-चाँदी और विदेशी सिक्कों को भी मुद्रांकित किया।

अलाउद्दीन खलजी के शासन काल तक चाँदी की मुद्राएँ प्रमुख थीं। ग़ियासुद्दीन तुगलक के शासन काल से सोने और बिलन की तुलना में चाँदी के सिक्कों की संख्या में गिरावट हुई। मुहम्मद तुगलक के अधीन सोने के सिक्के चाँदी के सिक्कों पर छा गए और फिरोज़ तुगलक के अधीन चाँदी के सिक्के लगभग लुप्त ही हो गए। 15वीं शताब्दी में बिलन सिक्के प्रचलन में प्रभावी रहे क्योंकि लोदी शासकों (1451-1526) द्वारा अन्य सिक्के जारी नहीं किए गए।

मुहम्मद तुगलक की प्रतीक-मुद्रा

इल्तुतमिश द्वारा प्रारंभ की गई मुद्रा प्रणाली में केवल एक अभिनव प्रयोग मुहम्मद तुगलक द्वारा किया गया था। सुल्तान ने ताँबे व पीतल की मिश्र धातु का एक सिक्का जारी कर उसकी संगणना चांदी के तनके के बराबर घोषित की। इस सिक्के पर पहली बार फारसी में अभिलेख भी था। इस नई मुद्रा का प्रत्यक्ष मूल्य इसके मूलभूत मूल्य से (इसे बनाने में प्रयोगित धातु की कीमत) से कहीं

अधिक था। इसलिए इसे प्रतीकात्मक मुद्रा कहा गया। पड़ोसी एशियाई साम्राज्यों में **प्रतीक-मुद्रा** को जारी करने के प्रयास हो चुके थे। चीन में कुबलई खाँ (1260-94) ने कागज की प्रतीक-मुद्रा जारी की और यह प्रयोग सफल रहा। ईरान में कैखत्तु खाँ (1293) ने भी प्रतीक-मुद्रा चलाने का प्रयास किया था, परंतु यह असफल रहा।

मुहम्मद तुगलक का प्रयोग भी पूर्णतः असफल रहा, शायद इसलिए कि इस नई मुद्रा की आसानी से नकल की जा सकती थी। बरनी अतिशयोक्तिपूर्ण ढ़ंग से लिखता है कि प्रत्येक 'हिन्दू' घर एक टकसाल बन गया (बरनी का 'हिन्दू' घरों पर यह आरोप शायद इसलिए था क्योंकि सोने-चाँदी के कारीगर और सर्राफ अधिकांशतः हिन्दू थे)। तथापि, सुल्तान ने इस असफलता को सौम्यता के साथ स्वीकार किया और प्रतीक-मुद्रा को राजकोष द्वारा शुद्ध मुद्रा में बदल दिया गया।

बोध प्रश्न-4

1) प्रतीक-मुद्रा को जारी करने की विवेचना कीजिए।

.....

.....

.....

2) सही कथन के आगे (✓) और गलत कथन के आगे (×) का चिह्न अंकित कीजिएः

क) अलाउद्दीन खलजी द्वारा सल्तनत की मुद्रा प्रणाली स्थापित की गई। ( )

ख) उत्तर भारत में चाँदी का एक *तनका* 48 *जीतल* के बराबर था। ( )

ग) दक्खन में सिक्कों हेतु चाँदी के मुख्य स्रोत स्थानीय शासकों के खजाने थे। ( )

घ) फिरोज़ तुगलक के शासनकाल में चाँदी के सिक्कों की संख्या सोने के सिक्कों से बहुत अधिक थी। ( )

9.7 सारांश

भू-राजस्व राज्य की आय का प्रमुख स्रोत था। इस इकाई में आपने भारतीय अर्थव्यवस्था पर दिल्ली सल्तनत के प्रभाव का अध्ययन किया। हमने देखा कि धीरे-धीरे किस प्रकार पहले से प्रचलित राजस्व वसूली और वितरण की व्यवस्थाएँ परिवर्तित हुईं, नकद लेन-देन बढ़ा, और शुद्ध चाँदी के सिक्के प्रारंभ किए गए। हमने दिल्ली सुल्तानों की मुद्रा प्रणाली की प्रकृति के बारे में भी पढ़ा।

9.8 शब्दावली

बही	आँकड़ा-पुस्तक, लेखा पुस्तिका, पंजी
फवाज़िल	अधिशेष राजस्व
महसूल	अनुमानित राजस्व
प्रतीक-मुद्रा	वह धातु मुद्रा जिसका सांकेतिक मूल्य उसके वास्तविक धातुई मूल्य से कहीं अधिक हो
उम्माल	*आमिल* का बहुवचन; राजस्व संग्राहक
ज़ोरतलब	विद्रोही (क्षेत्र अथवा पदाधिकारी)

9.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1) देखें उप-भाग 9.3.1

2) a) ✓ b) × c) ×

बोध प्रश्न-2

1) देखें भाग 9.4

2) a) देखें भाग 9.4

b) देखें भाग 9.4

बोध प्रश्न-3

1) देखें भाग 9.5

2) देखें भाग 9.5

बोध प्रश्न-4

1) देखें भाग 9.6

2) a) × b) ✓ c) ✓ d) ×

9.10 संदर्भ ग्रंथ

हबीब, इरफान, (2016) *इकॉनामिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया ए डी 1206-1526* (दिल्लीः तूलिका बुक्स).

हबीब, इरफान, (2011) *इकॉमिक हिस्ट्री ऑफ मिडिवल इंडिया, 1200-1500, हिस्ट्री ऑफ साइंस, फिलॉसफी एंड कल्चर, डी.पी. चट्टोपाध्याय सीरीज़* (दिल्लीः लांगमैन / पियरसन).

रेचौधरी, तपन और इरफान हबीब, (1982) *द कैम्ब्रिज इकॉनामिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया,* भाग 1 (दिल्लीः कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस)।

9.11 शैक्षणिक वीडियो

एग्रेरयन टैक्सेशन ऑफ दिल्ली सल्तनत
https://www.youtube.com/watch?v=UprsazXfCkI

एडमिनिस्ट्रेस्टिव रिफॉर्म्स ऑफ अलाउद्दीन खलजी
https://www.youtube.com/watch?v=JwApRMbkiTk

एडमिनिस्ट्रेस्टिव रिफॉर्म्स ऑफ मुहम्मद बिन तुगलक
https://www.youtube.com/watch?v=utaTyB_VCy0

इकाई 10 ग्रामीण समाज*

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 दिल्ली सल्तनत कालीन कृषि उत्पादन

10.2.1 फसलें तथा अन्य कृषि उत्पादन

10.2.2 नहरों द्वारा सिंचाई और उसका प्रभाव

10.3 13-14वीं शताब्दियों में कृषि संबंध

10.3.1 कृषक

10.3.2 ग्रामीण मध्यस्थ वर्ग

10.3.3 राजस्व मुक्त भू-अनुदान प्राप्तकर्ता

10.4 सारांश

10.5 शब्दावली

10.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

10.7 संदर्भ ग्रंथ

10.8 शैक्षणिक वीडियो

10.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम 13-15वीं शताब्दियों के दौरान कृषि अर्थव्यवस्था का अध्ययन करेंगे। हम यह भी मालूम करने का प्रयास करेंगे कि दिल्ली सल्तनत की स्थापना से कृषि उत्पादन और कृषि संबंधों पर क्या प्रभाव पड़ा? इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे:

- सल्तनत काल में कृषि योग्य भूमि का विस्तार, किसानों द्वारा उगाई जाने वाली फसलें, नहर-सिंचाई और इसको प्रभाव को जानेंगे, और
- सल्तनत कालीन कृषि संबंधों, पूर्ववर्ती ग्रामीण व्यवस्था में आये परिवर्तनों तथा अधीनस्थ ग्रामीण कुलीन तंत्र का अध्ययन करेंगे,

10.1 प्रस्तावना

दिल्ली सल्तनत की स्थापना के बाद कृषि उत्पादन अवस्था में बहुत क्रांतिकारी परिवर्तनों की आशा करना उचित नहीं होगा। हालांकि कुछ नई तकनीकों के आने से सिंचाई व्यवस्था में सुधार हुआ तथा नील और अंगूर जैसी कुछ फसलों का अधिक प्रसार हुआ जिन्हें नकदी फसलें (जिनकी बाजार में माँग हो) कहते हैं। वास्तव में महत्वपूर्ण परिवर्तन कृषि संबंधों के क्षेत्रों में दिखाई देते हैं। डी. डी. कोसाम्बी के अनुसार इन परिवर्तनों ने भारतीय 'सामंतवाद' में पहले से मौजूद तत्वों को अधिक प्रगाढ़ बनाने से अधिक कुछ नहीं किया जबकि मोहम्मद हबीब इन परिवर्तनों को इतना अधिक महत्वपूर्ण और प्रगतिशील मानते हैं कि उन्होंने इसे 'ग्रामीण क्रांति' का नाम दिया।

* **प्रो. शीरीन मूसवी, सेंटर ऑफ एडवांस्ड स्टडी इन हिस्ट्री, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़। यह इकाई हमारे पूर्ववर्ती पाठ्यक्रम ई.एच.आई.-03: *भारतः आठवीं सदी ईसवी से पंद्रहवीं सदी ईसवी तक*, खंड 6, इकाई 19 और 20 से ली गई है।**

10.2 दिल्ली सल्तनत कालीन कृषि उत्पादन

तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी में भूमि और व्यक्ति का अनुपात बहुत अनुकूल था (अर्थात् काफी मात्रा में भूमि उपलब्ध थी, और उस पर कृषि करने वालों की संख्या कम थी)। 1200 के आसपास भारत की जनसंख्या 1800 की तुलना में काफी कम थी। परन्तु यह कितनी कम थी इसके विषय में हमें कोई ज्ञान नहीं है। इस समय के इस प्रकार के कोई आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं। परन्तु ऐतिहासिक ग्रंथों से यह पता चलता है कि 16वीं शताब्दी की तुलना में 13वीं-14वीं शताब्दी में काफी कम क्षेत्र बसे हुए थे। गंगा-यमुना के दोआब के अत्यधिक उपजाऊ क्षेत्र में भी काफी बड़े-बड़े जंगल और चरागाह फैले हुए थे। 13वीं शताब्दी में सूफ़ी संत निज़ामुद्दीन औलिया ने दिल्ली और बदायूँ के बीच यात्रियों को बाघों द्वारा परेशान करने का विवरण दिया है। बरनी के अनुसार 14वीं शताब्दी में इस क्षेत्र में इतने घने जंगल थे कि बहुत बड़ी संख्या में किसानों ने सुल्तान की सेना से बचने के लिए यहां शरण ली। यहाँ तक कि बाबर के समय (1526-30) में भी मध्य भारत के जंगलों में कालपी और कानपुर के दक्षिण में यमुना के बीहड़ों के पार हाथी घूमते रहते थे। लेकिन अकबर के शासन के अंत तक (1605) मध्य *दोआब* के लगभग सम्पूर्ण क्षेत्र में खेती होती थी। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि दिल्ली सल्तनत के काल में कृषि योग्य भूमि के ऐसे विस्तृत क्षेत्र मौजूद थे जिन पर कृषि नहीं होती थी।

इसलिए भूमि के ऐसे टुकड़ों पर नियंत्रण की अपेक्षा ऐसे व्यक्तियों पर नियंत्रण महत्वपूर्ण था जो कृषि करते थे। इस स्थिति का कृषि संबंधों पर प्रभाव का हम यथा स्थान अध्ययन करेंगे। हालांकि कृषि व्यवस्था को समझने के लिए भूमि और व्यक्ति का अनुपात भी बहुत महत्वपूर्ण है। भूमि के अनुकूल अनुपात होने का तात्पर्य है कि कृषि काफी व्यापक थी। विस्तृत कृषि का सीधा और सरल अर्थ यह है कि कृषि उत्पादन के बढ़ने का तात्पर्य था अधिक भूमि पर फसल बोना। जबकि दूसरी ओर सघन खेती का अर्थ है कृषि योग्य भूमि का न बढ़ना बल्कि उसी सीमित उपलब्ध भूमि पर अधिक निवेश द्वारा अधिक फसल पैदा करना। यह निवेश अधिक मजदूर, अधिक हल, अधिक उर्वरक और अतिरिक्त सिंचाई के साधनों के रूप में होता है। अतः कृषि योग्य भूमि के काफी मात्रा में उपलब्ध होने से दिल्ली सल्तनत में कृषि बहुत विस्तृत थी। बड़ी मात्रा में कृषि योग्य अतिरिक्त भूमि और खाली पड़ी भूमि का अर्थ था कि पशुओं के लिए काफी चारागाह उपलब्ध थे। *मसालिक-उल अबसार* नामक समकालीन ग्रंथ के लेखक के अनुसार भारत में पशुओं की संख्या काफी अधिक और मूल्य बहुत कम था। अफीफ के अनुसार, *दोआब* में कोई भी गाँव ऐसा नहीं था जहाँ पशुशाला न हो। इन पशुशालाओं को ***खरक*** कहा जाता था। बैलों की संख्या तो इतनी अधिक थी कि ढोने के लिए अनाज और अन्य सामान बैलगाड़ी के बजाय बैलों के ऊपर लादा जाता था।

10.2.1 फसलें तथा अन्य कृषि उत्पादन

दिल्ली सल्तनत की कृषि की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता किसानों द्वारा बड़ी संख्या में फसलें उगाना था। संभवतः दक्षिण चीन के अतिरिक्त विश्व के किसी अन्य भाग में इतनी बड़ी संख्या में फसलें नहीं उगाई जाती थीं। इब्न बतूता भारत में फसलों की इतनी बड़ी संख्या देखकर बहुत प्रभावित हुआ था। उसने दोनों प्रमुख फसलों ***खरीफ*** और ***रबी*** के मौसम की विभिन्न उपजों का विवरण विस्तार से दिया है। वह यह भी बताता है कि दिल्ली के आसपास के क्षेत्रों में दो फसलें पैदा की जाती थीं। इसका तात्पर्य है कि एक ही भूमि पर *खरीफ* और *रबी* दोनों फसलें पैदा होती थीं। थक्कर फेरू, जो अलाउद्दीन खलजी के समय दिल्ली की टकसाल का प्रमुख था, लगभग 1290 में करीब 25 फसलों के नाम गिनाता है और उनकी औसत उपज भी बताता है। उपज के बारे में हम निश्चित रूप से कुछ कहने में असमर्थ हैं क्योंकि फेरू माप-तौल की जिन इकाइयों का वर्णन करता है उनके विषय में हमें विस्तृत ज्ञान नहीं है। परन्तु उसके विवरण से विभिन्न फसलों के बारे में काफी जानकारी प्राप्त होती है। खाद्यान अनाजों की फसलों में वह गेहूँ, धान, मोटे अनाज (ज्वार, मोठ, आदि) तथा दालों (उड़द, मूंग, मसूर, इत्यादि) का विवरण देता है। जबकि **नगदी फसलों** में वह गन्ना, कपास, तथा तेल प्रदान करने वाली फसलों, तिल और अलसी, आदि का वर्णन करता है।

इससे हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि शायद बढ़ी हुई सिंचाई सुविधाओं ने गन्ना और गेहूँ जैसी *रबी* (जाड़े की फसलों) फसलों के अधीन क्षेत्र बढ़ाने में मदद की होगी। 'तुर्की' विजेताओं के साथ गन्ने से मदिरा बनाने की विधि काफी बड़े क्षेत्र में लोकप्रिय हो गई। बरनी के अनुसार 14वीं

शताब्दी तक दिल्ली के आसपास और *दोआब* के क्षेत्र में मदिरा बनाना एक ग्रामीण उद्योग के रूप में स्थापित हो गया। थोड़ी आश्चर्य की बात यह है कि थक्कर फेरू अपने विवरण में नील की खेती के विषय में कुछ नहीं कहता जबकि नील के उत्पादन का संकेत इस बात से मिलता है कि इस समय काफी मात्रा में नील का निर्यात ईरान के लिए होता था। इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि ईरान में इल खान शासकों द्वारा नील की खेती को बढ़ावा दिया जा रहा था ताकि भारत पर निर्भरता समाप्त हो जाये। ऐसा लगता है कि नील बनाने के हौज़ में चूने-गारे के प्रयोग से सुधार होने के कारण नील की खेती को बढ़ावा मिला होगा।

इब्न बतूता के विवरण में हमें दिल्ली सल्तनत में फलों के उत्पादन के विषय में भी पता चलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कृषकों को फलों की 'कलम लगाने की तकनीक' का ज्ञान नहीं था। प्रारंभ में दिल्ली के अतिरिक्त केवल कुछ स्थानों पर ही अंगूर उगाये जाते थे। परन्तु अफीफ के अनुसार, चौदहवीं शताब्दी में अंगूरों का उत्पादन इतना बढ़ गया कि इसके दाम गिर गए। संभवतः ऐसा दो कारणों से हुआः

i) मुहम्मद तुगलक की किसानों को सलाह कि वे लगातार अपनी फसलों में सुधार करें और गेहूँ की जगह गन्ना और गन्ने की जगह अंगूर बोएँ।

ii) फिरोज़ तुगलक द्वारा दिल्ली के आसपास सात प्रकार के अंगूरों की खेती के लिए 1200 बाग उगाना।

लेकिन भारतीय किसान इस काल में रेशम उत्पादन (रेशम के कीड़े पालने का काम) नहीं करते थे और इस काल में वास्तविक रेशम के उत्पादन के विषय में कोई जानकारी नहीं मिलती। केवल *टसर, एरी* और *मूगा* जैसे जंगली या अर्द्ध-जंगली (कीड़ों से बने) रेशम के विवरण मिलते हैं। पहली बार 1432 में चीनी नाविक मा हुआन बंगाल में रेशम के कीड़े पालने का विवरण देता है।

10.2.2 नहरों द्वारा सिचाई और उसका प्रभाव

अधिकांशतः कृषि वर्षा अथवा नदियों द्वारा प्राकृतिक सिंचाई पर आधारित थी। चूंकि कृषि प्राकृतिक साधनों पर निर्भर थी अतः केवल वर्षा के पानी से उगाई जाने वाली *खरीफ* की फसल और मोटे अनाज उगाने की प्रवृत्ति अधिक थी।

समकालीन स्रोतों में हमें नहर द्वारा सिंचाई का विवरण भी मिलता है। दिल्ली सुल्तानों ने स्वयं सिंचाई के लिए नहरें खुदवाईं। नहरें बनाने वाला पहला सुल्तान ग़ियासुद्दीन तुगलक (1320-25) माना जाता है। लेकिन बाद में फिरोज़ तुगलक (1351-88) द्वारा बड़े पैमाने पर नहरें बनवाने का काम किया गया। फिरोज़ तुगलक ने यमुना नदी से हिसार पानी ले जाने के लिए दो नहरें बनवाईं: रजबवाह और उलुगखानी; *दोआब* में काली नदी से एक नहर खुदवाई जो दिल्ली के पास यमुना से मिलती थी, तथा एक-एक नहर सतलज और घग्घर नदी से निकलवाई। निश्चय ही, उन्नीसवीं शताब्दी से पहले यह नहरों का सबसे बड़ा जाल था।

नहरों द्वारा सिंचाई के कारण पूर्वी पंजाब में कृषि का बहुत विस्तार हुआ। अब गन्ने जैसी नगदी फसलों जैसे गन्ना, आदि के उत्पादन पर बहुत ध्यान दिया गया क्योंकि अन्य फसलों की तुलना में इसे सिंचाई की अधिक आवश्यकता होती थी। अफीफ के अनुसार भूमि का एक विशाल भाग जो लगभग 80 *कोस/* ***कुरोह*** (200 मील) में फैला था, रजबवाह और उलुगखानी नामक दो नहरों से सींचा जाता था। अफीफ के अनुसार पूर्वी पंजाब में जहाँ पहले केवल एक फसल होती थी अब सिंचाई की सुविधाओं के कारण *खरीफ* और *रबी* की दो फसलें पैदा होने लगीं। इससे अब नहरों के किनारे कृषि बस्तियाँ बस गईं। नहरों से सिंचाई वाले क्षेत्र में लगभग 52 ऐसी बस्तियाँ बस गईं। अफीफ अत्यंत उत्साहपूर्वक कहता है, 'एक भी गांव उजाड़ नहीं रह गया और एक गज भूमि भी ऐसी नहीं बची जहाँ खेती न होती हो'।

बोध प्रश्न-1

1) दिल्ली सल्तनत में भूमि और मनुष्य के अनुकूल अनुपात का क्या प्रभाव पड़ा?

.....

.....

.....

2) नहरों की सिंचाई पर एक टिप्पणी लिखिए।

.....

.....

.....

3) निम्नलिखित में से कौन से कथन सही (✓) हैं और कौन से गलत (×):

i) मुहम्मद तुगलक ने सिंचाई के लिए बहुत सी नहरें बनवाईं। ( )

ii) सल्तनत काल में *दोआब* में दो फसलें उगाई जाती थीं। ( )

iii) तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी में भारतीय किसानों द्वारा रेशम के कीड़ों का पालन किया जाता था। ( )

10.3 13-14वीं शताब्दियों में कृषि संबंध

कृषि अर्थव्यवस्था के विषय में चर्चा के लिए यह जानना अत्यंत आवश्यक है कि दिल्ली सल्तनत की स्थापना के बाद कृषि संबंधों की प्रकृति में क्या अंतर आया और यह अन्तर किस सीमा तक था। यह जानने के लिए 1200 से पहले की कृषि व्यवस्था को समझना जरूरी हो जाता है। हम यहाँ इस बहस में नहीं पड़ेंगे कि उस समय के सामाजिक और आर्थिक ढाँचे को 'सामंती' व्यवस्था कह सकते हैं या नहीं परन्तु हम काफी विश्वसनीय रूप से कह सकते हैं कि गौरी के आक्रमण के समय शासक वर्ग का आधार ग्राम था। लगभग कुछ उसी रूप में जैसा कि उस समय का पश्चिमी यूरोप का सामंत अभिजात्य वर्ग था।

इतिहासकार मिन्हाज गौरी और आरंभिक सुल्तानों का प्रतिरोध करने वाले भारतीय शासक वर्ग को *राय* और *राना* तथा उनके घुड़सवार सेनानायकों को *रावत* नाम से संबोधित करता है। उत्तर भारत के विभिन्न भागों से प्राप्त शिलालेखों के साक्ष्य के आधार पर राजा (*राय*), *रानका* (*राना*) तथा *राउत* (*रावत*) की सामंती पदानुक्रम व्यवस्था लगभग साबित हो चुकी है।

तुर्की शासन के आरंभिक काल में सुल्तानों ने इस पराजित और पराधीन ग्रामीण कुलीन वर्ग के साथ एक प्रकार का समझौता किया। जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि *खराज* मुख्य रूप से भेंट में वसूल की जाने वाली धनराशि थी। ऐसा प्रतीत होता है कि अलाउद्दीन खलजी के काल में जब भेंट का स्थान किसानों पर सख्ती से लागू और वसूल किए जाने वाले भूमि कर ने ले लिया फिर भी कर की वसूली में पहले के ग्रामीण कुलीन वर्ग की एक निश्चित भूमिका रहती थी। अलाउद्दीन खलजी के काल की एक घटना इस विषय की ओर इंगित करती है। अफीफ के अनुसार, जब दीपालपुर का *मुक्ती* (गवर्नर) गाज़ी मलिक वहाँ के राणा मल भाटी पर दवाब डालना चाहता था तो उस क्षेत्र के एक *राय* (राजा) ने माँग की कि वह पूरे वर्ष का भूमि कर नकद धन के रूप में तुरंत दे। जब राणा वह माँग पूरी न कर सका तो गाज़ी मलिक ने *मुकद्दमों* (ग्रामों के प्रधान) और *चौधरियों* को मारना-पीटना शुरू किया। इस घटना से यह पता चलता है कि पहले का कुलीन तंत्र हालांकि अब सत्ता में नहीं था और पराधीन था, परन्तु कम से कम 14वीं शताब्दी के प्रारंभ तक, अपने क्षेत्र के भूमि कर की वसूली करने का अधिकार रखता था। ग्राम प्रमुख और *चौधरी* की सहायता से सीधे कर वसूल करने का अधिकार प्रशासन के पास भी था।

10.3.1 कृषक

कृषि उत्पादन कृषकों द्वारा भूमि के पृथक-पृथक भागों पर किया जाता था। परन्तु यह कृषक अर्थव्यवस्था समतावादी नहीं थी। किसानों का स्वामित्व भूमि के भिन्न-भिन्न आकार के भागों पर था। बरनी के विवरण के अनुसार एक ओर तो बड़े भू-भागों के मालिक *खोत* और *मुकद्दम* थे जबकि दूसरी ओर भूमि के छोटे-छोटे टुकड़ों का स्वामी *बलाहार* था जो गाँव में निम्न कोटि का माना जाता

था। विभिन्न प्रकार के किसानों के नीचे बड़ी संख्या में भूमिहीन मजदूर रहे होंगे परन्तु उनकी उपस्थिति के बारे में स्पष्ट जानकारी बाद के स्रोतों में मिलती है समकालीन ग्रंथों में नहीं।

कृषि योग्य भूमि की प्रचुरता होने के बावजूद भी कृषक जिस भूमि को जोतता था 'उस पर शायद ही उसके स्वामित्व के अधिकार का प्रश्न था'। इसके विपरीत वह जो फसल उगाता था उस पर उच्च वर्गों के निश्चित अधिकार थे। हालांकि किसान को जन्म से स्वतंत्र स्वीकार किया जाता था परन्तु बहुधा उसे अपनी इच्छानुसार स्थान बदलने या भूमि छोड़कर जाने के अधिकार से वंचित रखा जाता था।

अफीफ के अनुसार, एक गाँव में लगभग 200 से 300 पुरुष होते थे। बरनी के अनुसार प्रत्येक गाँव में हिसाब-किताब रखने के लिए एक *पटवारी* होता था। उसके *बही*-खाते की जाँच से उस प्रत्येक वैध और अवैध भुगतान का पता चल जाता था जो किसान राजस्व अधिकारियों को देते थे। *पटवारी*, एक सरकारी कर्मचारी नहीं बल्कि ग्राम का अधिकारी होता था। निश्चय ही इस पद का प्रारंभ दिल्ली सल्तनत द्वारा नहीं किया गया था। इस प्रकार से एक ग्राम अधिकारी या लिपिक के होने से ऐसा प्रतीत होता है कि एक प्रशासनिक इकाई के रूप में गांव का अस्तित्व दिल्ली सल्तनत के प्रशासन से बाहर था।

ऐसा प्रतीत होता है कि सम्पूर्ण गाँव से भूमि कर का भुगतान एक संयुक्त इकाई के रूप में होता था अन्यथा सम्पूर्ण गांव का लेखा-जोखा रखने के लिए एक लिपिक की क्या आवश्यकता थी। इस प्रकार *पटवारी* का होना और उसके कार्यों की प्रकृति एक ग्रामीण समुदाय की उपस्थिति का भी आभास देता है। अलाउद्दीन खलजी द्वारा प्रत्येक किसान पर पृथक भूमि कर निर्धारण के प्रयासों के बावजूद ऐसा प्रतीत होता है कि व्यवहारिक रूप से भूमि कर के भुगतान के लिए गाँव एक इकाई के रूप में माना जाता था। बरनी की यह शिकायत कि 'अमीर का भार गरीब पर पड़ता है' भी यह दिखाती है कि ग्राम समुदाय एक आदर्श संस्था न होकर शोषण का एक यंत्र थी।

10.3.2 ग्रामीण मध्यस्थ वर्ग

खोत, मुकद्दम और *चौधरी* ग्रामीण कुलीन वर्ग का प्रमुख हिस्सा थे। यह वर्ग किसानों के उच्च वर्ग से संबंधित था। बरनी के विवरण से ऐसा प्रतीत होता है कि अलाउद्दीन के कृषि संबंधी उपायों से पहले इस वर्ग के पास कर मुक्त भूमि होती थी। एक वर्ग के रूप में ग्राम प्रमुखों का वर्ग बहुत समृद्ध था। बरनी विद्वेषपूर्ण प्रसन्नता से लिखता है कि अलाउद्दीन ने इस वर्ग (*खोत, मुकद्दम* और *चौधरी*) पर पूरी मात्रा में भूमि कर लागू किया और गृह कर और *चराई* कर से उन्हें जो छूट मिली थी वह भी समाप्त कर दी। उसने उन्हें अपनी ओर से कोई कर लगाने के लिए मना कर दिया और इस प्रकार इस (विशिष्ट) वर्ग को सामान्य किसानों के बराबर बना दिया।

लेकिन चूँकि यह ग्रामीण मध्यस्थ वर्ग भूमि कर की वसूली के लिए महत्वपूर्ण था इसलिए इनके विरूद्ध यह कठोर कदम अधिक समय तक नहीं चल सके और ग़ियासुद्दीन तुगलक ने पुनः संतुलन स्थापित किया। सबसे पहले उन्हें *चराई* कर और स्वयं की भूमि पर कर देने से छूट मिल गई। परन्तु उन्हें किसानों पर अपनी ओर से उप-कर (cess) लगाने का अधिकार नहीं मिला। फिरोज़ तुगलक के काल में उन्हें अन्य कई छूटें भी प्राप्त हो गईं। रोचक बात यह है कि बरनी इन रियायतों और उससे इस वर्ग की बढ़ी हुई समृद्धि का वर्णन बड़े अनुमोदन के साथ करता है।

इस ग्रामीण मध्यस्थ वर्गों में *चौधरी* पद का उदय संभवतः चौदहवीं शताब्दी में हुआ। इसका उल्लेख मिन्हाज द्वारा या तेरहवीं शताब्दी के किसी भी अन्य स्रोत में नहीं हुआ है। इस शब्द का प्रयोग पहली बार चौदहवीं शताब्दी के मध्य में बरनी द्वारा किया गया है। इब्नू बतूता कहता है कि '*चौधरी* एक सौ गाँवों का प्रमुख था' जिसे वह *सदी* कहता है। लेकिन चौदहवीं शताब्दी के मध्य से गाँवों के एक समूह के लिए प्रचलित शब्द *परगना* था। इतिहासकार इरफान हबीब के अनुसार संभवतः *चौधरी* गुर्जर-प्रतिहार और चालुक्यों के समय के अधिकारी *चौरासी* (*चौरासी* गाँवों का एक समूह) का ही परिवर्तन नाम था हालांकि उसकी सत्ता और शक्ति काफी कम हो चुकी थी।

फिरोज़ तुगलक के समय से इन सभी मध्यस्थ वर्गों को एक सामान्य पदनाम *ज़मींदार* के नाम से सम्बोधित किया जाने लगा जो मुगल काल में बहुत अधिक प्रचलित हो गया।

10.3.3 राजस्व मुक्त भू-अनुदान प्राप्तकर्ता

जैसा कि आप जानते हैं, धार्मिक व्यक्तियों और संस्थाओं, जैसे *दरगाहों, मस्जिदों* और *मदरसों* एवं शासक वर्ग पर निर्भर अन्य ऐसे व्यक्तियों की देख-भाल राजस्व-आय के अनुदानों द्वारा होती थी। ये राजस्व अनुदान *मिल्क, इदरार,* और *इनाम* कहलाते थे। ये अनुदान सामान्य तौर पर न तो वापस लिये जाते थे न ही हस्तांतरित किए जाते थे। परन्तु, सुल्तान को इन अनुदानों को रद्द करने का अधिकार था। ऐसा कहा जाता है कि अलाउद्दीन खलजी ने लगभग सभी अनुदानों को निरस्त कर दिया था। ग़ियासुद्दीन तुगलक द्वारा भी बड़ी संख्या में अनुदानों को रद्द किया गया। लेकिन, फिरोज़ तुगलक ने यह नीति बदलकर न केवल पहले प्रारंभ किए गए सभी अनुदानों को फिर से जारी किया, बल्कि नए अनुदान भी स्वीकृत किए। सुल्तान की इस उदारता के बावजूद, अफीफ द्वारा प्रदत्त आँकड़ों के अनुसार इन अनुदानों का कुल योग, कुल अनुमानित राजस्व आय (***ज़मा***) का लगभग 1/20 वाँ भाग था। अमीरों ने भी अपने स्वयं के *इक्ताओं* से राजस्व अनुदान प्रदान किए। उल्लेखनीय है कि सुल्तान ये अनुदान न केवल *खालिसा* बल्कि *इक्ता* क्षेत्रों में भी प्रदान करते थे। इन अनुदानों में खेती की जाने वाली और साथ ही कृषि योग्य भूमि, जहाँ पैदावार उत्पन्न नहीं की गई हो, सम्मिलित थी।

बोध प्रश्न-2

1) निम्नलिखित में से प्रत्येक पर लगभग 50 शब्दों में टिप्पणी लिखिए:

   क) ग्राम समुदाय .....

   .....

   ख) *चौधरी* .....

   .....

   ग) *पटवारी* .....

   .....

2) निम्नलिखित वक्तव्यों पर सही (✓) और गलत (×) के चिह्न लगाइए:

   i) दिल्ली सल्तनत के काल में किसानों के उत्पाद पर उच्च वर्गों का कोई अधिकार नहीं था। ( )

   ii) *पटवारी* गाँव का ऐसा कर्मचारी था जो बही-खाते रखता था। ( )

   iii) गाँव में निम्न स्तर पर *बलाहार* था जो भूमि के छोटे-छोटे टुकड़ों का स्वामी था। ( )

10.4 सारांश

इस इकाई में हमने दिल्ली सल्तनत काल में कृषि व्यवस्था, कृषि उत्पादन, सिंचाई के साधन तथा किसान और भूमि से संबंधित मध्यस्थ वर्गों का अध्ययन किया। इस काल में बड़ी मात्रा में कृषि योग्य भूमि कृषि के उपयोग में नहीं थी। *दोआब* के क्षेत्र में दो फसल उगाने की प्रथा प्रचलित थी। नहरें कृत्रिम सिंचाई का प्रमुख साधन थीं। गाँवों में उच्च भूमि अधिकारियों (*खोत, मुकद्दम* और *चौधरी*) तथा साधारण कृषक (***रैय्यत***) भिन्न स्तरों में बंटे थे।

10.5 शब्दावली

नकदी फसलें ऐसी फसलें जो प्रमुखतः बाजार में बेचने के उद्देश्य से उगाई जाती थीं, जैसे – गन्ना, कपास, तथा नील, आदि

आसवन वह प्रक्रिया जिसमें गर्म करके भाप बनाई जाती है और इस भाप को ठंडा करके तरल पदार्थ प्राप्त किया जाता है

कुरोह	दूरी नापने के लिए प्रयुक्त; 1 *कुरोह* = 2.5 मील
खरीफ	शरदकालीन फसल
खरक	पुशशाला
रबी	जाड़े की फसल
रैय्यत	साधारण किसान

10.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1) देखें भाग 10.2

2) देखें उप-भाग 10.2.2

3) i) × ii) ✓ iii) ×

बोध प्रश्न-2

1) देखें उप-भाग 10.3.1 और 10.3.2

2) i) × ii) ✓ iii) ✓

10.7 संदर्भ ग्रंथ

हबीब, इरफान, (2016) *इकॉनामिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया ए डी 1206-1526* (दिल्लीः तूलिका बुक्स).

हबीब, इरफान, (2011) *इकॉमिक हिस्ट्री ऑफ मिडिवल इंडिया, 1200-1500, हिस्ट्री ऑफ साइंस फिलॉसफी एंडवल्चर*, डी.पी. चट्टोपाध्याय सीरीज़ (दिल्लीः लांगमैन/पियरसन).

रेचौधरी, तपन और इरफान हबीब, (1982) *द कैम्ब्रिज इकॉनामिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया*, भाग 1 (दिल्लीः कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस).

10.8 शैक्षणिक वीडियो

दिल्ली सल्तनत एग्रीकल्चरल एंड रूरल क्लास
https://www.youtube.com/watch?v=_wx-xyeRucY

एग्रेरियन सिस्टम ऑफ द दिल्ली सुल्तान्सNI
https://www.youtube.com/watch?v=2fyT4_R3fuE

इकाई 11 तकनीकी और समाज*

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 कृषि तकनीकी

- 11.2.1 हल
- 11.2.2 बोआई
- 11.2.3 फसल-कटाई, गुहाई और ओसाई
- 11.2.4 सिंचाई के साधन

11.3 वस्त्र तकनीकी

- 11.3.1 ओटाई, धुनाई और कताई
- 11.3.2 बुनाई
- 11.3.3 रंगाई और छपाई

11.4 भवन निर्माण

- 11.4.1 चूना-गारा
- 11.4.2 *मेहराब* और गुंबद / *मेहराबी* छत

11.5 कागज निर्माण और जिल्दसाज़ी

11.6 सैन्य तकनीकी

- 11.6.1 *रकाब़*
- 11.6.2 *नाल*
- 11.6.3 बारूद और अग्नि-शस्त्र

11.7 कलई

11.8 काँच निर्माण

11.9 जहाज़ निर्माण

11.10 आसवन

11.11 सारांश

11.12 शब्दावली

11.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

11.14 संदर्भ ग्रंथ

11.15 शैक्षणिक वीडियो

11.0 उद्देश्य

इस इकाई में आपका परिचय दिल्ली सल्तनत तथा मुगल कालीन प्रमुख शिल्पों और तकनीकियों से कराया जायेगा। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप निम्नलिखित के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे:

* प्रो. ए. जान कैसर, सेंटर ऑफ एडवांस्ड स्टडी इन हिस्ट्री, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़।

यह इकाई हमारे पूर्ववर्ती पाठ्यक्रम ई.एच.आई.-03: *भारतः 8वीं सदी से 15वीं सदी तक*, खंड 6, इकाई 22 से ली गई है।

- कृषि तकनीकी,
- वस्त्र तकनीकी,
- भवन निर्माण कला,
- कागज निर्माण और जिल्दसाज़ी,
- सैन्य तकनीकी,
- कलई,
- काँच निर्माण,
- जहाज़ निर्माण, और
- आसवन तथा किणवन।

11.1 प्रस्तावना

ऐसी कोई भी मानव सभ्यता नहीं हुई जिसमें उसमें रहने वालों ने अपने जीवन हेतु किसी न किसी तकनीक अथवा शिल्पकारी का प्रयोग न किया हो। वास्तव में, तकनीकी का इतिहास किसी भी तरह से राजनैतिक व आर्थिक अध्ययन से कम महत्वपूर्ण नहीं है। तकनीकी किसी समाज की भौतिक संस्कृति का एक अविच्छेय हिस्सा है।

इस इकाई में हम आपको सल्तनत कालीन तकनीकी के कुछ पहलुओं की जानकारी देंगे।

सबसे उल्लेखनीय बात यह थी कि अप्रवासी मुसलमानों द्वारा लाई गई तकनीकी के नये यंत्रों और नई शिल्प-कलाओं से भारतीय परिचित हुए जो इस्लामी संस्कृति-क्षेत्रों में उत्पन्न अथवा विकसित हुए थे। अतएव हमारी कार्य पद्धति यह रहेगी कि स्वदेशी हस्तकलाओं और तकनीकी को नयी आयातित तकनीकी और हस्तकलाओं के साथ रख उनका अध्ययन करें।

एक बात की ओर आपका ध्यान जाएगा, वह यह कि उस काल में औजार, यंत्र और उपकरण लकड़ी और मिट्टी के बने होते थे, जबकि अति आवश्यकता पड़ने पर ही लोहे का प्रयोग होता था। आवश्यकता पड़ने पर रस्सी, चमड़े और बाँस का भी प्रयोग किया जाता था। इसी कारण वे कम खर्चीले होते थे।

हमने यहाँ विभिन्न शिल्पकर्मियों द्वारा प्रयोग में लाये जाने वाले यंत्रों व औजारों का अध्ययन नहीं किया है। उदाहरण के तौर पर – हथौड़ा, आरी, बसूला, रन्दा, सूआ, कुल्हाड़ी, बरमा, गेंती, बेलचा, तोशा (छेनी) और सन्दान (anvil), इत्यादि।

हमने नमक और हीरों का खनन – जो प्रमुख उद्योगों में से थे, का उल्लेख भी नहीं किया है। नमक खारे समुद-जल के प्राकृतिक वाष्पीकरण द्वारा भी व्यवस्थित ढंग से इकट्ठा किया जाता था।

11.2 कृषि तकनीकी

इस खंड में हम कृषि संबंधित प्रमुख तकनीकी यन्त्रों का वर्णन करेंगे।

11.2.1 हल

कई सदियों पूर्व हल द्वारा फावड़ा या कुदाली का स्थान ले लिया गया था। सिंधु-घाटी की सभ्यता के एक केन्द्र कालीबंगा (राजस्थान) से प्राप्त पुरातत्वीय प्रमाण 'लौह-रहित' हल के प्रचलन के लिए सुप्रसिद्ध है। यद्यपि इसमें संशय है कि यह मनुष्यों द्वारा या बैलों द्वारा चलाया जाता था। तथापि, वैदिक युग में बैलों युक्त हल-कृषि एक निर्विवाद सत्य है। लौह युग, जो गंगा के मैदानों में आर्यों के आवास के साथ पहचाना जाता है, ने हल के विकास में योगदान दिया। जहाँ पहले हल का सम्पूर्ण फ्रेम लकड़ी का बना होता था, अब लोहे का हल/फाल प्रयोग में लाया जाने लगा। लोहे के हल/फाल से अपेक्षाकृत कठोर भूमि की जुताई में बहुत सहायता मिली। मालवा में लगभग 1469 में संकलित एक फारसी शब्दकोश *मिफ़्ताह-उल फ़ुज़ला* में एक चित्र दो जुते हुए बैलों द्वारा एक लोहे के फाल युक्त हल को स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करता है। यूरोप की तरह, भारत में घोड़ों द्वारा

चलाए जाने वाले पहियों युक्त हल का निर्माण इसलिए नहीं हुआ कि यहां का हल वज़न में हल्का था जो नरम मिट्टी के लिए उपयुक्त था।

चित्र 11.1: लोहे का फाल युक्त हलः *मिफ्ताह-उल फुज़ला*

11.2.2 बोआई

बोआई के लिए छिटका-बोआई प्रणाली अपनाई जाती थी। कंधों पर रखे हुए कपड़े के थैले में से बीजों को बाहर निकालकर उन्हें हाथों से ही इधर-उधर छिड़क दिया जाता था। भारत में बीजवपित्र (seed drill; बीज बोने की मशीन) के समय-निर्धारण को लेकर विवाद हैः कुछ लोग इसका उद्गम वैदिक-काल में मानते हैं। कुछ भी हो, भारत के पश्चिमी तट के समानान्तर इसके प्रयोग का एकमात्र सकारात्मक प्रमाण एक पुर्तगाली – बारबोसा (लगभग 1510) द्वारा चावल की जल सिंचित-कृषि (wet-cultivation of rice) के संदर्भ में प्राप्त होता है।

11.2.3 फसल-कटाई, गुहाई और ओसाई

फसल की कटाई हंसिया द्वारा की जाती थी। गुहाई का कार्य बैलों द्वारा किया जाता था जो खलिहान में जई के ऊपर गोल-गोल चक्कर लगाते थे। 'पवन-शक्ति' का उपयोग ओसाई के लिए भूसी को अन्न-कणों से अलग करने के लिए किया जाता था।

11.2.4 सिंचाई के साधन

खेतों की सिंचाई हेतु जल प्राप्त करने के कई साधन थे। वर्षा का पानी एक प्राकृतिक स्रोत था। यह जल तालाबों और कुण्डों में इकट्ठा हो जाता था जिसे सिंचाई हेतु प्रयोग में लाया जाता था। बाढ़ अथवा आप्लावन द्वारा बने नदी-*नालों* का भी इसी उद्देश्य से उपयोग किया जाता था। लेकिन सबसे महत्वपूर्ण नियंत्रित साधन, विशेष तौर पर उत्तर-भारत में, कुओं का जल था। सिंचाई के साधनों का उद्देश्य कुओं से जल को बाहर निकालना था। ये कुएँ अधिकतर पक्के (ईंट-पत्थरों के) होते थे जिनकी दीवारें ऊँची और उन्हें घेरता हुआ चबूतरा होता था। कच्चे कुएं भी थे लेकिन ये पानी निकालने हेतु बहुत टिकाऊ या मजबूत नहीं माने जाते थे।

मोटे तौर पर पानी को बाहर निकालने हेतु 5 साधन अथवा तकनीकें प्रचलित थीं:

i) सबसे सरल तरीका रस्सी और बाल्टी द्वारा हाथों से, बिना किसी यंत्र की सहायता के, पानी बाहर खींचना था। वास्तव में बाल्टी आकार में छोटी होती थी जिसके फलस्वरूप इस विधि द्वारा बड़े विस्तृत खेतों को पानी नहीं दिया जा सकता था। परन्तु, हम छोटे खेतों में फसलों को इस प्रणाली द्वारा सिंचित किए जाने की संभावना से इंकार नहीं कर सकते, विशेषतः सब्ज़ियों के लिए जिन्हें अधिक पानी की जरूरत नहीं रहती।

ii) दूसरी विधि चरखी अथवा घिर्री के प्रयोग द्वारा रस्सी-बाल्टी द्वारा हाथों से ही पानी बाहर निकालने की थी। निश्चय ही, चरखी के कारण मानव-ऊर्जा की आवश्यकता कम हो गयी और अपेक्षाकृत बड़े आकार के थैले या बड़ी बाल्टियाँ रस्से से बांधी जा सकती थीं। इसका उपयोग घरेलू कार्यों के लिए भी विशेषतः महिलाओं द्वारा किया जाता था।

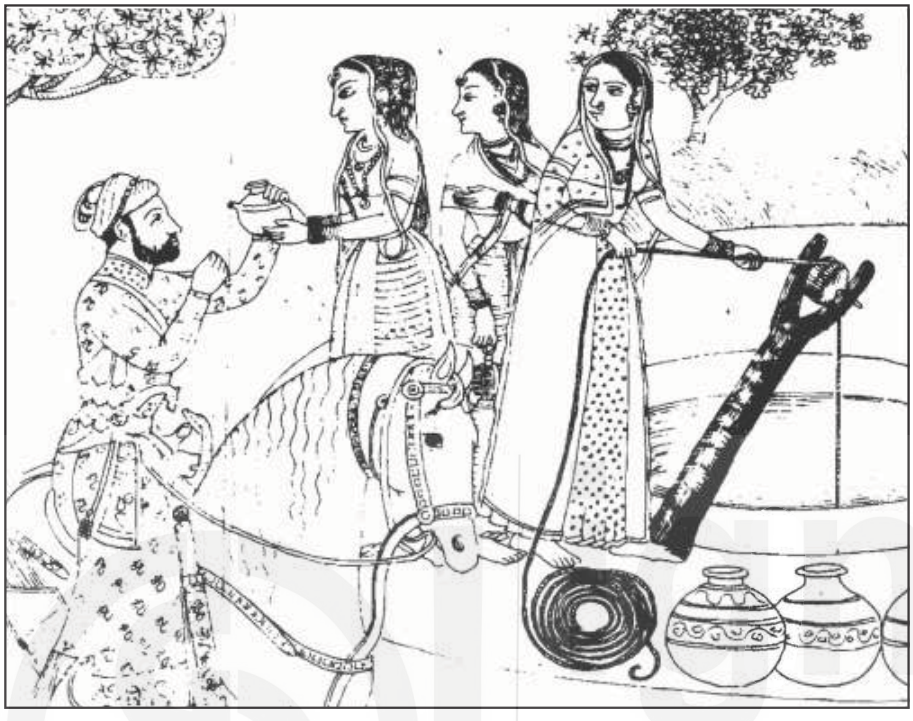

चित्र 11.2: चरखी के प्रयोग द्वारा पानी बाहर निकालने की विधि

iii) रस्सी-बाल्टी-चरखी प्रणाली की एक उन्नत विधि में मानव शक्ति के स्थान पर बैलों की एक जोड़ी का प्रयोग किया जाने लगा। अब यह विशिष्ट रूप से सिंचाई के लिए प्रयोग में लिया जाने वाला विशेष यंत्र हो गया। उत्तर भारत के कुछ क्षेत्रों में आज भी यह प्रचलन में है जिसे *चरस* कहा जाता है। यह एक बहुत बड़ा थैला होता है जिससे यह आभास होता है कि एक बार ऊपर खींचने में अत्यधिक मात्रा में पानी बाहर निकाला जा सकता है। इसके अलावा बैलों के चलने का मार्ग ढलावदार होता था जिसकी लंबाई कुएँ की गहराई के अनुरूप होती थी।

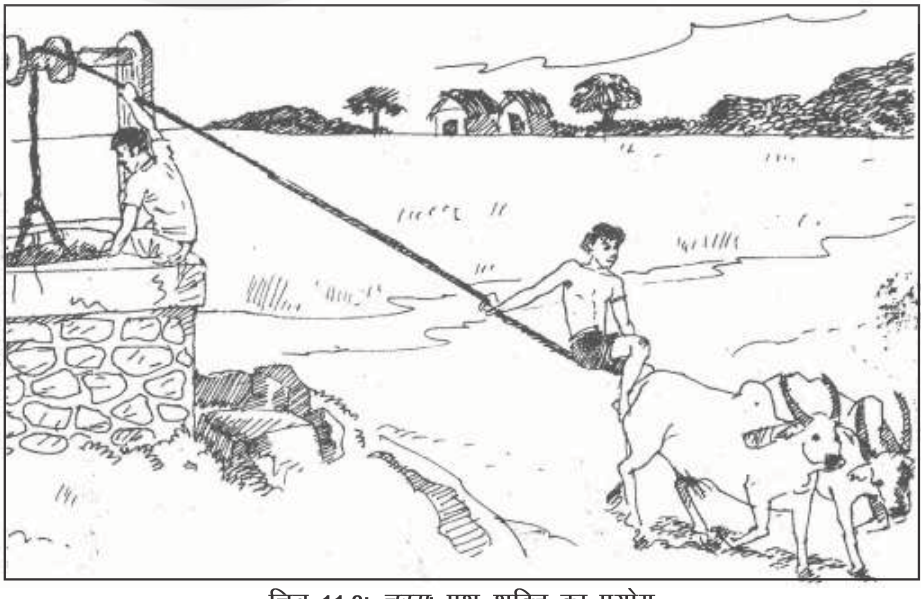

चित्र 11.3: *चरस*: पशु शक्ति का प्रयोग

इस विधि द्वारा प्राप्त जल पीने, बर्तन धोने या कपड़े धोने के लिए प्रयोग में नहीं लिया जाता था। इन पाँचों प्रणालियों में से, *चरस* एक बहुउद्देशीय साधन नहीं था। यह पूर्णरूप से सिंचाई हेतु ही प्रयोग में लाया जाता था, इस तथ्य को आज तक अनुभव नहीं किया गया है।

iv) चौथी विधि जो अर्द्ध-यांत्रिक प्रकृति की थी, 'लीवर के प्रथम श्रेणी सिद्धांत' पर आधारित थी। इसमें एक अभिलम्ब बल्ली या पेड़ के तने (इस कार्य हेतु विशेष रूप से बनी) की धरनी से एक लम्बी रस्सी बांधी जाती थी जिससे यह झूलने वाली स्थिति में रहे। बाल्टी को रस्सी से बांधा जाता था जिसके दूसरे सिरे को कुएँ के ऊपर लटकती हुई बल्ली के एक सिरे से बांधा जाता था। इस बल्ली के दूसरे सिरे से एक 'प्रतिभार' लटकाया जाता था जो पानी से भरी बाल्टी से थोड़ा अधिक भारी होता था। इस प्रकार भार और 'प्रतिभार' के दोनों किनारों पर होने से बल्ली के मध्य में आलम्ब (fulcrum) उत्पन्न होता था। इस प्रक्रम में इसे प्रयोग में लाने वाले व्यक्ति को बहुत कम प्रयास करने की आवश्यकता पड़ती है। यह विधि मिस्र में, *शदूफ* के नाम से जानी जाती है। संस्कृत में इसे *तुला* कहते हैं, परंतु बिहार और बंगाल में इसे *ढेंकली* या *लाट / लाठा* कहा जाता है।

चित्र 11.4: ढेंकली

v) पाँचवीं पानी निकालने की प्रणाली *साकिया* अथवा '*रहट*' थी। ऊपर वर्णित चार प्रक्रमों में से किसी में भी पहिए मूलभूत अवयव नहीं थे। इस जल-चक्र को जल-यंत्र कहा जा सकता है क्योंकि इसमें **गियर** प्रणाली की व्यवस्था थी। गियर प्रणाली के साथ हम तकनीकी रूप से एक बहुत उन्नत अवस्था में प्रवेश करते हैं: इस पर केवल हाल ही में बिजली के ट्यूबवैलों द्वारा श्रेष्ठता स्थापित की गयी।

साकिया के उद्गम को लेकर काफी विवाद है: क्या मुसलमानों के भारत में आने के पूर्व इसका अस्तित्व था अथवा क्या यह तुर्कों के माध्यम से भारत में लाई गई? भारत में इसका प्रारंभिक रूप एक चक्र और उसके घेरे से लगे हुए घड़े अथवा मिट्टी के बर्तन था। संस्कृत में इस *अरघट्टा* अथवा *अरहट* कहा जाता था। अंग्रेजी में इस यंत्र को *नोरिया* कहा जाता था जो अरबी शब्द *नौरह* का बिगड़ा हुआ रूप है। इसे मानव शक्ति द्वारा संचालित किया जाता था। इसे उथले पानी या पानी के खुले स्रोत पर प्रयोग किया जाता था जैसे नहर, जलाशय, नदियाँ जिनमें पानी का स्तर ऊपर तक हो। अतः इसका प्रयोग कुओं पर बिल्कुल नहीं किया जा सकता था।

दूसरे चरण में इस यंत्र का प्रयोग कुओं पर किया गया। इस प्रकार के प्रयोग के लिए पहिए से जुड़े हुए पानी के घड़ों को हटाकर इन घड़ों को एक माला या एक लम्बी कड़ी के रूप में जोड़ा गया जो इतनी लम्बी होती थी कि कुएँ के पानी के स्तर तक पहुँच सके। यह माला या कड़ी दोहरी रस्सी से बनाई जाती थी और कोई सिरा खुला नहीं होता था। इसमें घड़ों को लकड़ी के टुकड़ों से जोड़ा जाता था। महत्वपूर्ण बात यह है कि यंत्र के इस परिवर्तित रूप के लिए अरबी या फारसी में कोई पृथक नाम नहीं है। संस्कृत में इसे *घटियंत्र* (पात्र-यंत्र; pot-machine) कहा गया हालांकि सामान्य

तौर पर दोनों प्रकार के *नोरिया* के लिए *अरघट्टा* या *अरहट्टा* रूप प्रचलित रहा। यह भी मानव शक्ति द्वारा ही संचालित किया जाता था।

तीसरे तथा अन्तिम चरण में हम इस यंत्र में तीन नए परिवर्तन पाते हैं।

i) इसमें दो अतिरिक्त पहिए लगाए गए,

ii) गियर पद्धति का प्रयोग किया गया, तथा

iii) पशु शक्ति का प्रयोग।

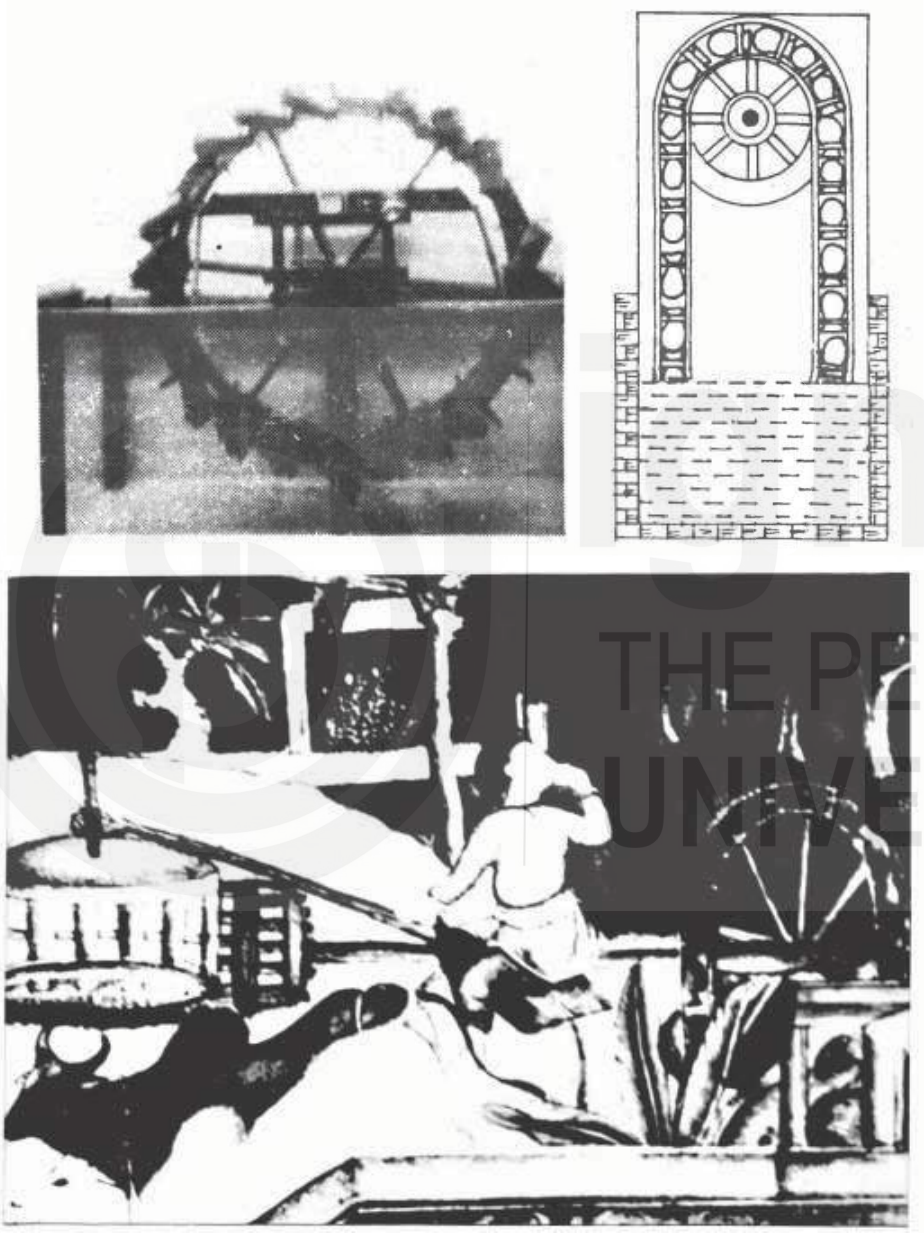

चित्र 11.5: (क) *नोरिया की प्रथम अवस्था*; (ख) *नोरिया* की द्वितीय अवस्थाः एक कल्पनीय मॉडल (ग) *साक़ियाः नोरिया* की तृतीय अवस्थाः देखें गियर यांत्रिकी के साथ तीन चक्र; तीसरा चक्र घड़ों के साथ

इसमें एक लैन्टर्न पहिया, जिस पर थोड़ी-थोड़ी दूरी पर छोटी-छोटी खूंटियाँ लगी रहती थीं, एक धुरी से जोड़ा जाता था जो पशु शक्ति द्वारा क्षैतिज दिशा में घूमता था। इससे जुड़ा एक अन्य उर्ध्वाकार पहिया था जो एक धुरी से तीसरे पहिए से जुड़ा हुआ था। इस तीसरे पहिए में घड़ों की माला लगी रहती थी जिससे कुएँ से पानी निकलता था। इस प्रकार यह गियर व्यवस्था पशुबल के उपयोग हेतु

थी। मुख्य रूप से इसमें लेन्टर्न-चक्र के क्षैतिज बल (horizontal motion) को कुएँ के ऊपर लगे हुए चक्र (वह चक्र जिसमें घड़े लगे हुए हों) के लिए लम्बवत बल (vertical motion) में परिवर्तित करना होता था।

इस विवाद में कुछ आधुनिक विद्वान भ्रमवश *नोरिया* की प्रथम दो अवस्थाओं को *साकिया* के समरूप समझते हैं। लेकिन अब आप जान गये हैं कि *साकिया* न केवल अपनी परिकल्पना बल्कि अपने घटकों की दृष्टि से भी मूलतः भिन्न हैं। एक अर्थगत भूल *साकिया* के लिए भी *अरघट्टा* और *अरहट्टा* (आधुनिक *रहट*) शब्दों का प्रयोग था जब यह प्रारंभिक मध्यकाल में मुसलमानों द्वारा लाया गया। वास्तव में प्राचीन भारत में पशुओं द्वारा चलाए जाने वाले जल-चक्रों का कोई प्रमाण नहीं है।

जल को कुओं से निकलने की ऊपर उल्लेखित 5 विधियों को दो मुख्य वर्गों में बांटा जा सकता है:

अ) आवर्तक अथवा असतत् जल आपूर्ति प्रणाली, और

ब) निरंतर आपूर्ति व्यवस्था।

हिन्दुस्तान का अधिकांश भाग समतल भूमि पर स्थित है। यद्यपि हिन्दुस्तान में इतने अधिक नगर तथा इतनी विलायतें हैं किन्तु किसी स्थान पर भी जल-धाराएँ नहीं हैं। नदियों तथा कहीं-कहीं पर स्थित जलाशय यहाँ की 'जल-धाराएँ' (*आक़ार-सुलार*) हैं। कुछ नगरों में जहाँ नहरें (*आरिक़*) खोदकर जल लाना सम्भव है वहाँ भी नहीं लाया जाता। इसके अनेक कारण हैं। इनमें से एक कारण यह है कि यहाँ की कृषि तथा यहाँ के उद्यानों को जल की आवश्यकता नहीं होती। खरीफ़ की फ़सल वर्षा के जल से ही हो जाती है। यह बड़ी ही विचित्र बात है कि *रबी* की फ़सल भी जल के बिना हो जाती है। नन्हे पौधों को डोलची अथवा *रहट* द्वारा पानी दिया जाता है। उन्हें पानी से लगातार दो या तीन वर्षों तक सींचा जाता हैं; तत्पश्चात् उन्हें सींचने की कोई आवश्यकता नहीं होती। कुछ तरकारियों को निरन्तर सिंचाई की आवश्यकता होती है।

लाहौर, दीपालपुर, सहरिन्द तथा उस क्षेत्र के स्थानों में *रहट* से सिंचाई होती है। दो रस्सियों को जो गोलाई में कुएँ तक पहुँच जाएँ ले लिया जाता है। दोनों रस्सियों के बीच-बीच में लकड़ियाँ बांध दी जाती हैं। लकड़ियों पर घड़े बांध दिये जाते हैं। जिन दोनों रस्सियों में लकड़ियाँ तथा घड़े बंधे रहते हैं उन्हें उस चर्खी पर रख देते हैं जो कुएँ पर रहती हैं। इस चर्खी की धुरी से एक दूसरी चर्खी जुड़ी रहती हैं। उसके निकट (*qash; क़ाश*) ही खड़ी धुरी पर एक अन्य चर्खी होती है। इस चर्खी को बैल घुमाता है। इसके दांत चर्खी के दाँत से जुड़े रहते हैं। इस प्रकार वह चर्खी जिस पर घड़े होते हैं घूमती है। जहाँ घड़ों से जल गिरता है वहाँ एक कठौता होता है और जल नालियों से होता हुआ प्रत्येक स्थान पर पहुँच जाता है।

आगरा, चन्दवार, बयाना, तथा उस क्षेत्र में डोल से सिंचाई होती है। इसमें बड़ा परिश्रम करना पड़ता है और यह बड़ी ही भद्दी विधि है। कुएँ के किनारे दो शाखाओं वाली एक लकड़ी जाती है। इन दोनों के मध्य में एक गडारी लगा देते हैं। एक बहुत बड़े डोल में एक रस्सी बांधी जाती है। रस्सी गडारी पर रख दी जाती है और उसका एक छोर बैल से बांध दिया जाता है। आदमी को बैल को हाँकना पड़ता है तथा दूसरे को डोल को खाली करना पड़ता है। जब बैल डोल खींच कर वापस होता है तो रस्सी बैल के मार्ग पर, जिस पर मूत्र तथा गोबर पड़ा रहता है, लथेड़ती है और फिर वही रस्सी कुएँ में पहुँचती है।

कुछ खेतों को जिन्हें सिंचाई की आवश्यकता होती है, स्त्री तथा पुरुष डोल भर-भर कर सींचते हैं।

बाबर द्वारा वर्णित सिंचाई के विभिन्न तरीके (*बाबरनामा*, अनुवाद, ए.ए. रिजवी, *मुगल कालीन भारतः* बाबर, भाग 2, पृ. 170-71.

प्रथम चार विधियों को पहले और पांचवी प्रणाली को दूसरे वर्ग में रखा जा सकता है। इन साधनों को चलाने के स्रोत के आधार पर, अर्थात् मानव द्वारा संचालित और पशुओं द्वारा संचालित, प्रथम और चौथी विधि को मानव शक्ति वर्ग में और अन्य को पशु शक्ति वर्ग में रखा जा सकता है। चूँकि जल को कुओं से ऊपर उठाना होता था, पाँचवीं को छोड़ सभी प्रणालियों में दो वस्तुएँ समान रूप में थीं: रस्सी और बाल्टी/थैले। बाल्टी अथवा थैले का आकार प्रयोग में लाई जा रही 'शक्ति' के अनुपात में होता था।

अन्य कई औजार जैसे, बेलचा, गेंती और खुरपी भी होते थे जो न केवल कृषि क्षेत्र में बल्कि बागवानी में भी काम आते थे।

बोध प्रश्न-1

1) 13-15वीं शताब्दियों के मध्य कुओं से जल को निकालने के लिए प्रयोग में आने वाली विभिन्न प्रणालियों का वर्णन कीजिए।

.....

.....

2) कुओं से पानी निकालने में प्रयुक्त '*साकिया*' तकनीक का वर्णन कीजिए?

.....

.....

3) सही वाक्य के आगे (✓) और गलत वाक्य के आगे (×) चिह्न लगाइएः

क) कच्चे कुएँ बहुत अधिक पानी निकालने हेतु टिकाऊ होते थे। ( )

ख) *ढेंकली* विशुद्ध लीवर सिद्धान्त पर कार्य करती थी। ( )

ग) *साकिया* के अंतर्गत गियर प्रणाली और पशु-शक्ति का प्रयोग किया जाता था। ( )

घ) *चरस* का उपयोग मुख्य रूप से घरेलू कार्यों हेतु किया जाता था। ( )

11.3 वस्त्र तकनीकी

सल्तनत काल में तुर्कों द्वारा वस्त्र-निर्माण के क्षेत्र में बहुत सी तकनीकें प्रयोग में लाई गई।

11.3.1 ओटाई, धुनाई और कताई

कपास की खेती का संबंध कृषि तकनीकी से है। कपास के गोलों को इकट्ठा करने के पश्चात् इसको बुनने योग्य बनाने के लिए तीन मूलभूत चरणों से गुजरना पड़ता हैः

क) ओटाई अथवा बीजों को अलग करना,

ख) धुनाई अथवा तंतुओं को ढीला करना, और

ग) कताई अथवा सूत बनाना।

प्रथम प्रक्रिया दो तरीकों से की जाती थीः

अ) रोलर और बोर्ड विधि, तथा

ब) चरखी

इस प्रकार बीजों से अलग की हुई रुई को, तंतुओं को अलग व उन्हें मुलायम करने के उद्देश्य से, डण्डों अथवा प्रत्यंचा (bow string) से धुना (फारसी में *नद्दाफी* और हिन्दी में *धुनना*) जाता था। कताई का कार्य पारंपरिक विधि से, *तकली* (फारसी में दूक) के साथ एक *फिरकी* जो इसे नियंत्रित करती थी, होता था।

वस्त्र निर्माण के क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण तकनीकी क्रान्ति 13-14वीं शताब्दी में मुसलमानों द्वारा भारत में लाए *चरखे* (spinning wheel) द्वारा संभव हुई। प्राचीन भारत में *चरखे* का कोई अस्तित्व नहीं था। *चरखों* की प्रथम लिखित संदर्भ हमें इसामी की *फुतुह-उस सलातीन* (1350) में प्राप्त होता है। इसके (*चरखे*) प्रयोग से *तकली* का महत्व समाप्त नहीं किया बल्कि इसने *तकली* के परिक्रमण में वृद्धि कर दी। *चरखे* के लकड़ी के फ्रेम के एक किनारे *तकली* को लगाया जाता था जिसे दूसरी ओर स्थित चक्र पर लगे पट्टे से जुड़े होने के कारण घुमाया जा सकता था। इस प्रकार *चरखे* में शक्ति संचालन (पट्टे के चलने से) और गतिपालक चक्र (fly wheel) के सिद्धांत निहित थे जिसके फलस्वरूप परिभ्रमण की अन्तरीय गतियाँ (differential speed of rotation) प्राप्त होती थीं। इस

बात पर विवाद है कि कब इस यंत्र के साथ हत्थे या क्रैन्क हैंडिल को संलग्न किया गया। लेकिन यह विवाद अब *मिताह-उल फुज़ला* (*c*.1530) के एक चित्र की सहायता से समाप्त हो गया है। इसमें *चरखे* को फ्रेम के साथ लगे हत्थे से घुमाते हुए दर्शाया गया है।

एक आकलन के अनुसार एक ही समय में एक *चरखा* एक *तकली* की तुलना में छः गुना अधिक सूत निर्मित कर सकता है। इसके परिणामस्वरूप अधिक सूत निर्मित होने लगा और लगातार अधिक वस्त्र भी बनने लगे होंगे। यहां यह बताना आवश्यक है कि *तकली* से निर्मित सूत बहुत महीन किस्म का होता था जबकि *चरखे* द्वारा मोटे कपड़ों हेतु मोटा सूत निर्मित होता था।

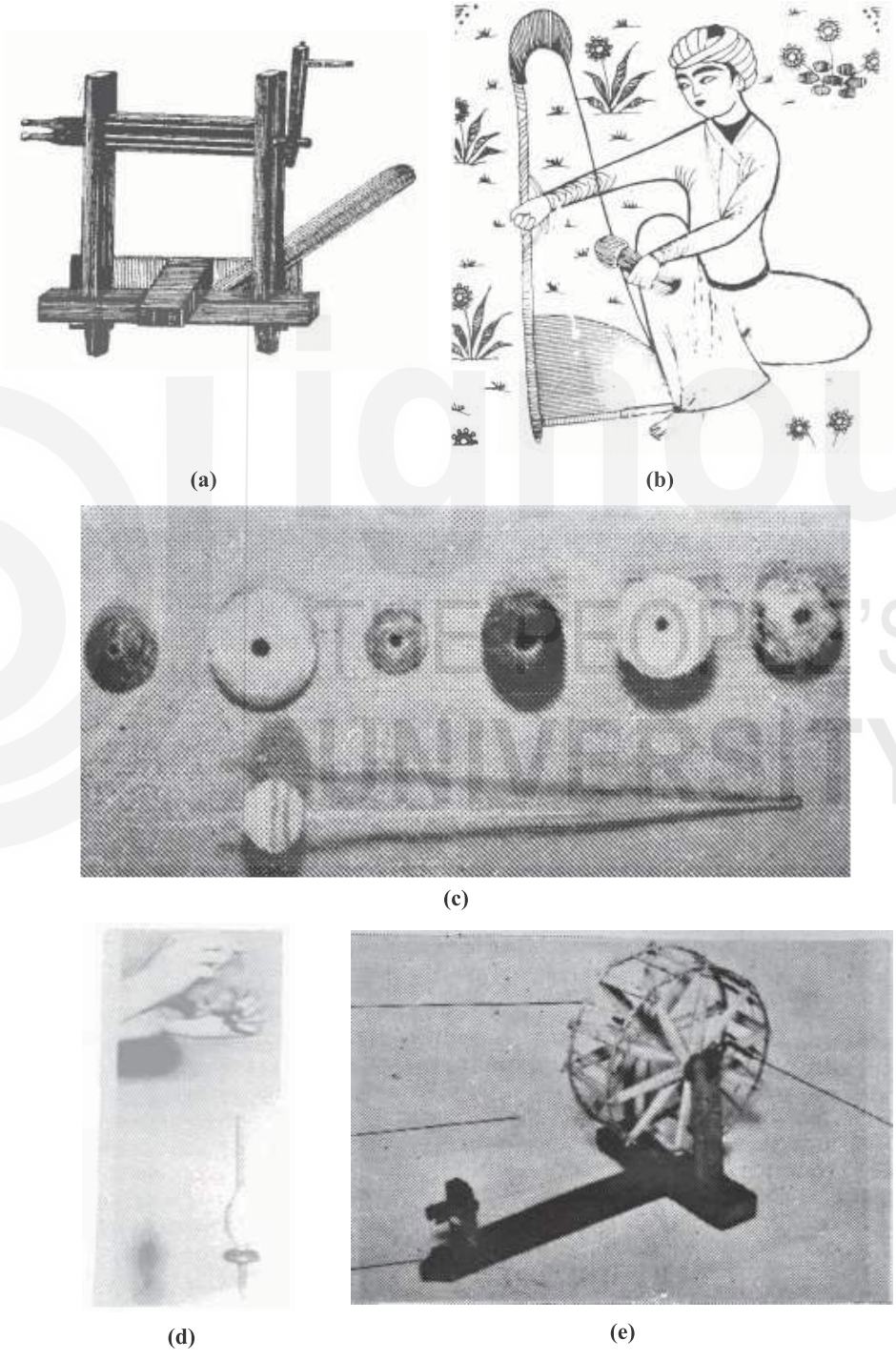

चित्र 11.6: (a) ओटाई : रोलर तथा बोर्ड विधि (b) धुनाई (c) तकली (d) तकली द्वारा सूत कताई (e) *चर्खी*: 1 तकली 2 बेल्ट 3 चक्र 4 हैंडल

11.3.2 बुनाई

प्रक्षेप-भरनी (throw-shuttle) प्रकृति के क्षैतिज **करघे** (horizontal loom) का प्रयोग साधारण या लहरिएदार मोटे रेशम के वस्त्रों के निर्माण करने में होता था। यह कहना मुश्किल है प्राचीन भारत में **पैरों द्वारा चलाये जाने वाले करघे** (**pit-loom/treadle loom**) का प्रयोग होता था, किन्तु इस करघे का प्रथम प्रमाण हमें लगभग 1530 में चित्रित *मिफ्ताह-उल फुज़ला* (लगभग 1469) से प्राप्त होता है। इस करघे में बुनकर अपने पैरों से धागों के तानों को ऊपर उठा और फैला सकता था जबकि उसके हाथ मुख्यतः भरनी (shuttle) और शेड (shed) पर कार्य करते थे। इससे बुनाई की गति में वृद्धि आयी। पैटर्न बुनाई (एक ही साथ विभिन्न रंगों की) के संदर्भ में एक विद्वान का मानना है कि इस उद्देश्य हेतु ड्रा लूम (draw loom) लगभग 1001 में दक्षिण भारत में उपलब्ध था। लेकिन इसके संबंध में संदेह है। इस मत के जवाब में यह कहा गया है कि शायद इसे मुसलमानों द्वारा 17वीं शताब्दी के अंत में भारत लाया गया था।

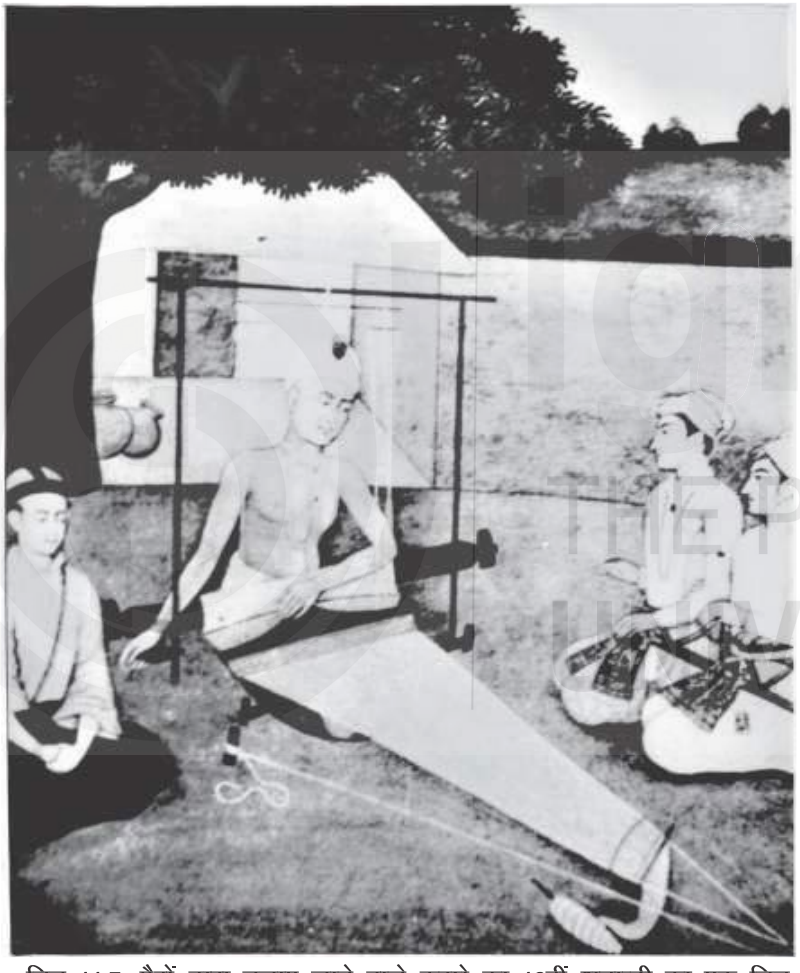

चित्र 11.7: पैरों द्वारा चलाए जाने वाले करघे का 16वीं शताब्दी का एक चित्र (कार्यरत कबीर)

11.3.3 रंगाई और छपाई

वनस्पति और खनिज स्रोतों से प्राप्त विभिन्न रंगों को रंगाई हेतु प्रयोग में लाया जाता था। नील, मजीठ (madder) और लाख, इत्यादि अधिक प्रचलित थे। नील का प्रयोग विरंजन (bleaching) और रंगाई दोनों के लिए होता था। तेज रंगों के लिए कई पदार्थ जैसे फिटकिरी (**alum**) मिलाए जाते थे। भारतीय *रंगरेज* **निमज्जन** (**immersion**), बंधेज जैसी कई विधियों को अपनाते थे। परन्तु ठप्पा-छपाई (*छापा*) प्राचीन भारत में ज्ञात नहीं थी। भारत में इसको लाने का श्रेय कुछ विद्वानों द्वारा मुसलमानों को दिया जाता है।

बोध प्रश्न-2

1) 13वीं-15वीं शताब्दियों में ओटाई के लिए प्रचलित विधियों का वर्णन कीजिए?

.....

.....

.....

2) *चरखे* पर एक टिप्पणी लिखिए।

.....

.....

.....

3) बुनकरों द्वारा 13वीं-14वीं शताब्दियों में अपनाई जाने वाली तकनीकों का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

11.4 भवन निर्माण

इस भाग में हम मुख्यतः तुर्कों द्वारा भारत में लायी गई भवन निर्माण संबंधी तकनीकों का अध्ययन करेंगे।

11.4.1 चूना-गारा

प्राचीन भारत में निर्माण के पारंपरिक मूलभूत अवयव मिट्टी, पत्थर, लकड़ी और कभी-कभी ईंटें थीं। साधारण चुनाई का पदार्थ या गारा साधारणतः मिट्टी व पानी से मिलकर बना होता था। इसमें भूसा मिलाकर इसे उन्नत किया जाता था जो प्लास्टर के उपयोग में भी आता था। परन्तु चूना-गारा निश्चित रूप से दिल्ली सल्तनत के काल में बाहर से आए। मुसलमानों द्वारा इसे यहाँ लाया गया।

चूना-गारा के मुख्य अवयव चूना और सुर्खी (कूटी हुई ईंटें) होते थे। चूना, इसके प्राप्ति स्रोत के आधार पर, कई प्रकार का होता था। चूने के दो मुख्य स्रोत जिप्सम और बजरी (कंकड़) होते थे जिन्हें भट्टियों में जलाकर **अधबुझा चूना** (**quicklime**) प्राप्त किया जाता था। इसे पानी के साथ मिलाकर **बुझा चूना** (**slake lime**) प्राप्त किया जाता था। इस मिश्रण में अब सुर्खी मिलायी जाती थी। इसके पश्चात् गारे को अधिक चिपचिपा बनाने हेतु इसमें कई प्रकार के श्लेषीय (gelatinous), लसदार (glutinous) और रालदार (resinous) चुनाई कारकों जैसे गोंद, दालों, गुड़, इत्यादि को मिलाया जाता था।

11.4.2 *मेहराब* और गुंबद / *मेहराबी* छत

चूने-गारे के प्रयोग का एक परिणाम ईंटों के अधिक उपयोग के रूप में निकला क्योंकि इसने ईंटों के भवनों को अधिक टिकाऊ बना दिया। दूसरा महत्वपूर्ण परिणाम यह था कि चूने-गारे ने वैज्ञानिक तरीके से निर्मित ***मेहराब*** के निर्माण को सही मायनों में संभव बनाया। वास्तव में, वैज्ञानिक पद्धति से *मेहराब* के निर्माण में ईंटों व पत्थरों की जो व्यवस्था होती है उसके लिए एक मजबूत चुनाई पदार्थ की सख्त जरूरत थी जो **डाट पत्थरों** (**voussoirs**) को एक साथ जोड़कर रख सके। चूने-गारे ने इस आवश्यकता को पूर्ण किया। इससे तुर्कों के आने से पूर्व के भारतीय भवनों में *मेहराबों* की लगभग अनुपस्थिति को समझा जा सकता है। लेकिन कुषाण युग इसका अपवाद थाः कौशाम्बी (इलाहाबाद के निकट) में किए गए उत्खनन से छोटी खिड़कियों पर बनी (दरवाजों पर नहीं) *मेहराबों* का अस्तित्व सामने आया है। जैसा कि आप जानते हैं कुषाण मध्य एशिया से यहाँ आए थे अतएव वे *मेहराब* निर्माण से परिचित थे। उसके पश्चात् वैज्ञानिक रूप से बनी *मेहराबों* का एक भी प्रमाण मुसलमानों के यहाँ आने तक उपलब्ध नहीं है। *मेहराब* का एक अन्य रूप **कदलिकाकृत** (**corbelled**) होता था जो धरणिक (trabeate/lintel and beam) निर्माण प्रक्रिया का ही एक रूप था अर्थात् स्तम्भ-व-धरनी (pillar-and-beam) तकनीक जो पूर्व मुस्लिम भारतीय स्थापत्य कला की एक विशिष्टता थी।

मेहराब से *गुंबद* (*मेहराबी* या *गुंबदी* छत; vaulted roofing; dome) की ओर प्रगति एक प्राकृतिक विकासक्रम था क्योंकि *गुंबद* निर्माण बिना *मेहराब* के ज्ञान के संभव नहीं था। इसलिए यह कहा

जाता है कि एक *गुंबद* वास्तव में 360 डिग्री पर बनी एक संपूर्ण *मेहराब* है। दूसरे शब्दों में, *गुंबद* का निर्माण वैज्ञानिक तरीके से बनायी गई *मेहराबों* के प्रतिच्छेदन (intersecting) के सिद्धान्त पर किया जाता था (ध्यान रखें: *गुंबदों* की समानता भ्रमवंश बौद्ध स्तूपों के साथ न की जाए)।

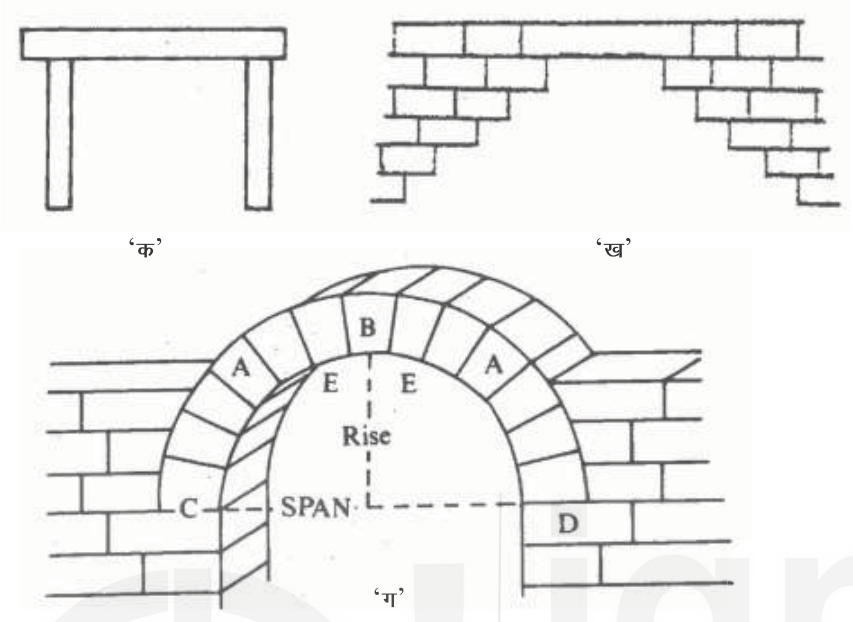

वैज्ञानिक तरीके से बनाई गई *मेहराब* और उसके भाग

चित्र 11.8: (क) स्तम्भ-व-धरनी (ख) कदलिकाकृत (ग) वैज्ञानिक तरीके से बनायी गई मेहराब और उसके भाग (i) डाट पत्थर (voussoirs) (ii) मुख्य पत्थर (key stone)

11.5 कागज निर्माण और जिल्दसाज़ी

अब आप जान गये हैं कि बाहर से आये मुसलमानों ने किस प्रकार इस्लामिक सांस्कृतिक क्षेत्रों में विकसित हुई विभिन्न प्रकार की तकनीकों और औजारों को भारत में लाने का कार्य किया। कागज निर्माण ऐसा ही एक अन्य योगदान था।

प्राचीन भारत में लेखन हेतु कई साधन थे: शिलाएँ, ताम्र पट्टिकाएँ, रेशम और सूती वस्त्र और विशेष रूप से निर्मित ताड़ की पत्तियों (*तालपत्र*) और भुर्ज की छाल (*बुर्जपत्र*)। अंतिम दो का प्रयोग पुस्तकें लिखने हेतु किया जाता था।

कागज़ का निर्माण सर्वप्रथम पहली शताब्दी सी ई के लगभग चीन में हुआ। यह बाँसों की लुग्दी द्वारा निर्मित किया गया। अरब-मुसलमानों ने कागज निर्माण उन चीनियों द्वारा सीखा जिन्हें 751 के युद्ध के दौरान बन्दी बनाया गया था। शीघ्र ही अरबों ने इस विद्या से चिथड़ों और पुराने मलमल से कागज़ बनाना विकसित किया।

भारतीय शायद 7वीं शताब्दी में कागज के बारे में परिचित थे परन्तु उन्होंने इसका उपयोग कभी भी लेखन सामग्री के रूप में नहीं किया। जब चीनी यात्री आइ-चिंग ने भारत की यात्रा की तो उसे चीन ले जाने के लिए संस्कृत पांडुलिपियों की नकल हेतु भारत में कागज प्राप्त नहीं हुआ। उसके स्वयं के कागज के समाप्त हो जाने के कारण उसने अपने मित्रों को चीन से उसे कागज भेजने हेतु संदेश भेजा।

दिल्ली सल्तनत के काल में कागज का कई उद्देश्यों के लिए प्रयोग होता था, विशेषतः पुस्तकों, *फरमानों* और विभिन्न व्यावसायिक तथा प्रशासकीय दस्तावेजों हेतु। कागज दिल्ली सल्तनत में इतनी बड़ी मात्रा में उपलब्ध था कि दिल्ली के मिठाई बेचने वाले अपने ग्राहकों को मिठाइयाँ कागज से निर्मित पैकटों, जो पुड़ियाँ कहलाती थीं, में देते थे जो आज भी भारत में प्रचलित हैं। लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि कागज निर्माण केन्द्र कम व दूर-दूर थे। 14वीं शताब्दी के चीनी समुद्री यात्री मा हुआन में हमें ज्ञात होता है कि बंगाल में कागज निर्माण होता था। तथापि अधिकांश कागज की आवश्यकता को इस्लामिक देशों, विशेषतः समरकंद और सीरिया, द्वारा कागज को आयातित कर पूरी की जाती थी।

कागज़ पर पुस्तकों के लिखने की प्रवृत्ति के साथ ही जिल्दसाज़ी की एक नवीन कला का भारत में विकास हुआ क्योंकि उसकी तकनीक प्राचीन लेखन सामग्री की पत्तियों (*तालपत्रों* और *बुर्जपत्रों*) को जोड़ने की कला से भिन्न थीं।

बोध प्रश्न-3

1) भवन निर्माण कला के क्षेत्र में तुर्कों के योगदान का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

2) भारत में कागज़ निर्माण पर संक्षेप में लिखिए।

.....

.....

.....

11.6 सैन्य तकनीकी

इस भाग में हम केवल निम्नलिखित तीन चीजों का अध्ययन करेंगे:

क) *रक़ाब*,

ख) *नाल*, और

ग) बारूद।

11.6.1 *रक़ाब*

यह एक निर्विवाद तथ्य है कि लोहे के *रक़ाब* (iron-stirrup) के बारे में भारत में अज्ञानता थी। शायद इसीलिए *रक़ाब* के लिए संस्कृत में कोई शब्द नहीं है। इसके स्थान पर शायद 'कोतल कश' (surcingle), 'बड़े अंगूठे वाले *रक़ाब*' (big toe-stirrup) और 'निलम्बन काँटे' (suspension hooks) का भारत में प्रचलन था। परन्तु *रक़ाब* विशेष मुसलमानों की देन थी। इस *रक़ाब*, को सर्वप्रथम 6वीं शताब्दी के आसपास चीन में प्रयोग में लाया गया और बाद में वहाँ से यह अगली शताब्दी में ईरान व अन्य इस्लामिक देशों में पहुँचा। इल्तुतमिश के शासनकाल में युद्ध कला पर संकलित एक फारसी स्रोत में *रक़ाब* का उल्लेख मिलता है। (*रक़ाब* के सैनिक महत्व के लिए बॉक्स में लिखे परिच्छेद को देखें)।

> युद्ध में घोड़े के उपयोग के इतिहास को तीन कालों में विभक्त किया गया है: पहला, रथों में उपयोग, दूसरा चरण घुड़सवार योद्धा का है जो अपने घुटनों की शक्ति का उपयोग कर घुड़ससवारी करता था, और तीसरे चरण में घुड़सवार, घुड़सवारी के लिए *रक़ाब* का उपयोग करने लगा। युद्ध में घोड़े पर बैठे घुड़सवार की स्थिति पैदल सैनिक से बेहतर होती थी। सेना में घोड़े के उपयोग की प्रत्येक बेहतर तकनीक को दूरगामी सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन से जोड़ा गया है।
>
> जब *रक़ाब* का उपयोग नहीं होता था, तो घुड़सवार खूब जमकर नहीं बैठ पाता था और बराबर उसके गिरने की संभावना बनी रहती थी। लगाम और एड़ के बल पर वह घुड़सवारी करता था, साधारण काठी के सहारे वह घोड़े पर जमा रहता था, फिर भी युद्ध करने में उसे दिक्कत होती थी और वह अपनी युद्ध कला को विकसित नहीं कर सकता था। प्रमुख रूप से वह घोड़े पर चढ़कर तेजी से गतिशील मुद्रा में तीरंदाजी कर सकता था और भाले फेंक सकता था। तलवार का उपयोग सीमित था क्योंकि '*रक़ाब*' के अभाव में आपका ध्वंसकारी घुड़सवार अपने दुश्मनों पर तलवार भांज तो सकता था, पर अगर वार खाली हो गया तो वह स्वयं धराशायी हो सकता था। *रक़ाब* के चलन के पहले उसे भाला एक हाथ में संभाले रखना पड़ता था और कंधे और भुजा की शक्ति से उससे वार किया करता था। *रक़ाब* के उपयोग से आक्रमण का तरीका और अधिक कारगर हो गया। अब वह भाले पर अधिक नियंत्रण रख सकता था और उसे बाँह और अपने शरीर के बीच रखकर शत्रु पर वार कर सकता था। इसके लिए अब उसे केवल अपने बाहुबल का उपयोग नहीं करना पड़ता था, बल्कि इसके लिए वह अपनी समस्त शक्ति और घोड़े की पकड़ का भी उपयोग कर सकता था।
>
> *रक़ाब* से घुड़सवार को आगे-पीछे के अतिरिक्त बगल से भी सहारा मिलता था और वह काठी के अगले और पिछले हिस्से का उपयोग कर सकता था। इसके उपयोग से घोड़ा और घुड़सवार एक इकाई के रूप में हो गये और उनके आक्रमण में अपूर्व धार और तेजी आ गयी। अब योद्धा को घोड़े के संचालन में अपने हाथों को व्यस्त नहीं करना पड़ता था, अब उसे इशारा भर करना होता था। इस प्रकार *रक़ाब* के उपयोग से मानवीय ऊर्जा की बचत होने लगी और पशु की शक्ति का पूरा उपयोग होने लगा, इससे योद्धा की शत्रु पर मार करने की क्षमता में वृद्धि हुई। इसने घुड़सवार आक्रमण की आकस्मिक तकनीक को जन्म दिया, युद्ध कला के क्षेत्र में यह एक नया क्रांतिकारी परिवर्तन था।
>
> **लिन व्हाइट, *मिडिवल टैक्नॉलॉजी एण्ड सोशल चेंज*, लंदन, 1973, पृ. 1-2**

11.6.2 *नाल*

जहाँ मध्यकालीन भारत के कुछ विद्वानों ने *रक़ाब* को तुर्कों को मिली सैन्य सफलताओं के लिए एक सहयोगी कारक माना है, वहीं कम से कम उनके आक्रमणों की प्रारंभिक अवस्थाओं में *नाल* (horse-shoe) को इसके एक दुर्बल सहयोगी के रूप में लिया गया है।

घोड़े को पालतु बनाना ही पर्याप्त नहीं था। इसकी सवारी करने के उद्देश्य से इसे नियंत्रित करने हेतु कुछ यंत्रों की आवश्यकता पड़ती थी, जैसे साधारण लगाम (bridle), काँटेदार लगाम (bitted bridle), हरना (आगे) और पिछले भाग (pommel and cantle) सहित *जीन* (saddle) और *रक़ाब*।

लोहे की *नाल* का आगमन बाद में हुआ। यह विचित्र है कि घुड़सवारी के साजो-सामान में से नाल ही एकमात्र ऐसा सामान है, जिसका अन्य की भांति घोड़े को नियंत्रित करने में प्रत्यक्ष रूप से कार्य नहीं होता है। यदि ऐसा है तो *नाल* लगाने की जरूरत क्यों? इसका कारण घोड़े के खुर हैं जो अश्वीय शरीर रचना का सर्वाधिक कोमल हिस्सा होता है। घोड़े का खुर लगातार बढ़ने वाला मानव नाखुनों के सदृश्य एक श्रृंगी संरचना होती है जिसके टूटने, छिलने और चिरने का खतरा बना रहता है। अपने मूल प्राकृतिक आवास में घोड़े के पैर और खुर स्वयं व्यवस्थित रहते थे, अतः उनको काटने की आवश्यकता नहीं थी। परन्तु घरेलू और सधे हुए घोड़ों को उनको काम में लाते वक्त, विशेष रूप से नम अक्षान्तरों में, *नाल* चढ़ाई जाती थी। ज़ख्मी पैर युक्त घोड़ा लंगड़ाएगा और उसके सवार के लिए किसी उपयोग का नहीं रहेगा। *नाल* लगाने के दो लाभ हैंः प्रथम इससे नरम जमीन पर पैर को अच्छी पकड़ प्राप्त होती है और द्वितीय खुरदरे कठोर धरातल पर खुर सुरक्षित रह सकते हैं। इस संदर्भ में घुड़सवारों की विश्व व्याप्त सूक्ति समझ आती हैः '*नाल* नहीं, घोड़ा नहीं'। अश्व सेना में एक पंगु घोड़ा, किसी घोड़े के न होने से ज्यादा बेकार माना जाता है।

भारत के किसी भी पुरातत्वीय उत्खनन में *नाल* का उल्लेख नहीं मिला है। अब यह एक निर्विवाद तथ्य है कि तुर्कों के भारत आने के साथ ही ये यहाँ आयातित हुए थे। *नाल* एक अरबी/फारसी शब्द है, इसे बनाने या लगाने वाले को *नालबंद* और *नाल* चढ़ाई को *नालबंदी* कहा जाता है। घोड़ों पर संस्कृत साहित्य (*सलिहोत्रा*) में *नाल* लगाने का उल्लेख नहीं मिलता है (*रक़ाब* और *चरखे* की भाँति)। इसी कारण *नाल* लगाने के कार्य पर विगत में केवल मुसलमान कारीगरों का एकाधिकार था। कुछ भी हो, हमारे स्रोत केवल ठंडी *नाल* चढ़ाई की जानकारी देते हैं न कि यूरोप में प्रचलित गर्म-*नाल* चढ़ाई के बारे में।

11.6.3 बारूद और अग्नि-शस्त्र

कई दशकों पूर्व, कुछ विद्वानों, भारतीय व यूरोपीय दोनों, यह सिद्ध करना चाहते थे कि बारूद और अग्नि-शस्त्रों का प्राचीन भारत में प्रचलन था। संस्कृत स्रोतों में से *शुक्रनीति* को मुख्य रूप से उन्होंने अपने अध्ययन हेतु केन्द्र-बिन्दु माना। तथापि अन्य विद्वानों ने उनके निष्कर्षों को, *शुक्रनीति* के सावधानीपूर्ण अध्ययन के बाद, ठुकरा दिया। पुनश्चः यह सिद्ध करने के असफल प्रयास हुए कि गज़नी शासक सुल्तान महमूद के आक्रमणों के बाद भारत आने वाले मुसलमान अग्नि-शस्त्रों का प्रयोग करते थे।

बारूद में शोरा, गंधक और चारकोल होता है, और इसका आविष्कार सर्वप्रथम चीन में हुआ। कालान्तर में यह इस्लामिक देशों में पहुँचा। बाहर से आए तुर्कों द्वारा बारूद, शायद 13वीं शताब्दी के अंत में या 14वीं शताब्दी के प्रारंभ में, भारत लाया गया। लेकिन यह बात ध्यान देने योग्य है कि सुल्तान फिरोज़ शाह तुगलक के शासनकाल तक इसका उपयोग केवल आतिशबाजी के लिए होता था न कि अग्नि-शस्त्रों या तोप के गोले दागने हेतु। अग्नि-शस्त्रों का सर्वप्रथम उपयोग 15वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत के गुजरात, मालवा और दक्खन जैसे प्रदेशों में हुआ। किसी भी स्थिति में, नियमित आधार पर यूरोपीय अग्नि-शस्त्रों का प्रयोग पुर्तगालियों द्वारा किया गया जब वे 1498 में कालीकट आए, और उत्तर भारत में प्रारंभिक 16वीं शताब्दी में बाबर द्वारा।

11.7 कलई

घरेलू ताँबे (और पीतल) के बर्तनों में बासी खाद्य सामग्री रखने से अम्ल-विषाक्ता का खतरा रहता है। इसलिए उन पर टिन का एक आवरण, विशेष रूप से अन्दर की ओर, खाद्य-अम्ल की रासायनिक क्रिया से बचने के लिए, लगाया जाता है। यह कला भारत में तुर्कों के साथ आयी। इस तकनीक का प्राचीन भारत में कोई प्रमाण नहीं मिलता। साहित्यिक स्रोतों के अलावा, दक्षिण (कोल्हापुर के निकट) में उत्खन्न क्षेत्रों में पुरातत्वीय प्रमाण मिलता है जहाँ एक, बाहर व भीतर दोनों ओर, कलई युक्त ताम-पात्र प्राप्त हुआ है। परन्तु चूँकि, इस पात्र के साथ बहमनी साम्राज्य (1347-1538) के सिक्के भी प्राप्त हुए थे। यह उसी युग का माना जाना चाहिए।

कलई करने वाले *कलईगार* (*क़लई* = टिन) कहलाते थे। टिन (*रंगा*) एक अत्यंत आघातवर्ध्य और नभ्य (malleable and ductile) धातु हैं, और धातु के बर्तनों पर इसकी कलई से उनको जंग व रासायनिक विषाक्तता से सुरक्षा मिलती है। *कलईगार* सर्वप्रथम बर्तनों से मिट्टी, इत्यादि हटा देता है। इसके बाद उन्हें एक छोटी भट्टी पर चारकोल की सहायता से गर्म किया जाता है। ताप की आवश्यक डिग्री को बनाए रखने के लिए छोटी धौंकनियों (bellows) का प्रयोग किया जाता है। अगले चरण में रुई की सहायता से शुद्ध टिन और नौसादर (salammoniac) के मिश्रण को लगाया जाता है। नौसादर का वाष्पीकरण हो जाता है और धातु का धरातल स्वच्छ निकल आता है। इसी दरम्यान टिन पिघलता है तथा रुई को निरंतर चारों ओर रगड़कर पूरे पात्र पर इसे फैला दिया जाता है – बाहर व अन्दर।

अबुल फज़ल *आइन-ए अकबरी* में *कलई* का उल्लेख करता है। उसके अनुसार शाही रसोई के ताम्र बर्तनों पर एक माह में दो बार *कलई* की जाती थी जबकि शहजादों व अन्य के लिए एक बार।

बोध प्रश्न-4

1) निम्नलिखित को परिभाषित कीजिए:

रक़ाब .....

.....

.....

नाल .....

.....

.....

2) खाली स्थानों को पूरा कीजिए:

अ) बारूद का आविष्कार ..... में हुआ।

ब) भारत में अग्नि-शस्त्रों का प्रयोग सर्वप्रथम ..... के काल में हुआ।

स) भारत में कलई की विधि ..... द्वारा प्रसारित की गई।

11.8 काँच निर्माण

भारत में शीशे का सर्वप्रथम प्रयोग सामान्य काल से पूर्व प्रथम सहस्राब्दि में हुआ बताया जाता है। समाज में किसी वस्तु की उपस्थिति उसके संभावित प्रयोग का संकेत दे सकती है, परन्तु आवश्यक नहीं कि वह इसकी तकनीक से भी परिचित हो। फिर भी भारत में शीशे की कमी नहीं थीः शायद आयातित शीशे के सामानों से लंबे संबंध ने स्वदेशी उत्पादन को जन्म दिया हो। परन्तु भारतीय काँच-सामग्री मनकों और चूड़ियों के निर्माण तक सीमित रही। मुसलमानों के आगमन के बाद इस्लामिक देशों से दवाइयों की शीशियों, जार और पात्र भारत आने लगे। यह निर्धारण करना संभव नहीं है कि क्या वे शीशे के सामान वास्तव में दिल्ली सल्तनत के काल में इनके आयातित रूपों की नकल पर बनाए गये थे। फिर भी, हमारे अध्ययन काल में चश्में के लिए लेन्स या दर्पण जैसी काँच से बनी वस्तुएँ प्राप्त नहीं होती (दर्पण ताँबे या काँसे के बने होते थे जिनके धरातल चमकीले होते थे)।

11.9 जहाज निर्माण

नावों और जहाजों के सम्पूर्ण फ्रेम समस्त विश्व की भाँति लकड़ी के बनते थे। पहले तख्तों को खाँचों द्वारा (rabetting or tongue-and-groove method) जोड़ा जाना था। फिर उन्हें नारियल के छिलकों से बने रस्सों द्वारा सी दिया जाता था। कभी-कभी लकड़ी की कीलों का भी प्रयोग होता था। लोहे की कीलों और सन्धरों (clamps) का उपयोग तख्तों को जोड़ने में 1498 के बाद यूरोपीय जहाज निर्माण के प्रभाव में किया जाने लगा। लंगर पत्थरों से निर्मित होने थे, बाद में यूरोपवासियों द्वारा लोहे के बने लंगर प्रचलित किए गए।

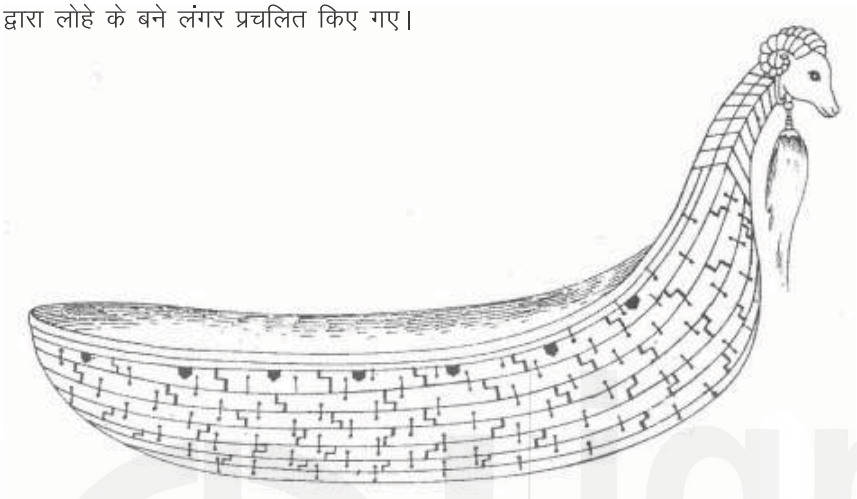

चित्र 11.11: रैबेटिंग और तख्तों को जोड़ने के लिए लोहे की कीलों का प्रयोग

समुद्र यात्राओं के लिए मुसलमानों द्वारा भारत में दिशासूचक (कुतुबनुमा; magnetic compass) का उपयोग एक महत्वपूर्ण योगदान था।

11.10 आसवन

ऐसा कोई समाज नहीं हुआ जिसने मादक पेय पदार्थों का निर्माण न किया हो। वैदिक युग में *सोम रस* ऐसा ही एक मादक पेय था। मदिरा प्राप्त करने की दो विधियाँ हैं: किण्वन (fermentation) और आसवन (distillation)। प्रथम विधि सम्पूर्ण विश्व में सुज्ञात थी। मदिरा चावल, गन्ने के रस, महुआ के फूलों के किण्वन द्वारा प्राप्त की जाती थी।

आसवन (distillation) विधि बाद में प्रचलित हुई। यह कहा जाता है कि सर्वप्रथम इसकी खोज 12वीं शताब्दी में इटली में हुई। भारत के संदर्भ में एक राय यह है कि आसवन तुर्कों की देन है।

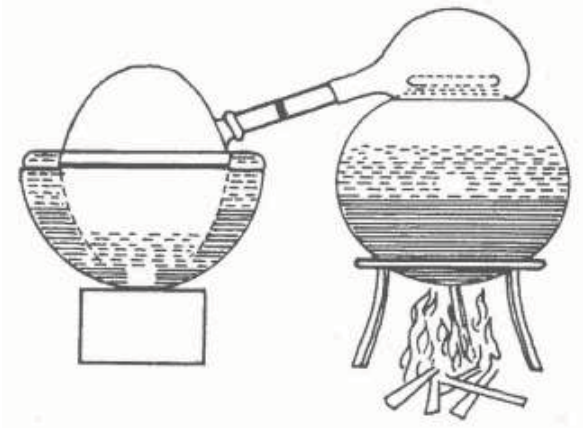

चित्र 11.12: आसवन-यन्त्र का निर्माण (मार्शल, 1953)

यह मत स्वीकार्य नहीं है। हाल ही के वर्षों में पाकिस्तान के सिरकप (तक्षशिला) और शैखान ढ़ेरी में उत्खनन के दौरान आसवन के संयंत्र जैसे संपूर्ण संक्षेपण पात्र (condensers) और भभका (still)

के कुछ भाग प्राप्त हुए हैं जो तक्षशिला के संग्रहालय में सुरक्षित हैं। यह संयंत्र दूसरी शताब्दी बी सी ई से दूसरी शताब्दी सी ई के मध्य का है, तुर्कों के भारत आने से बहुत पूर्व। तुर्कों का योगदान इसे पूर्व की तरफ प्रचलित करने का है।

बोध प्रश्न-5

1) चूल बैठाने (rabbeting) की विधि से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

2) मध्य काल में आसवन विधि पर संक्षिप्त में लिखिए।

.....

.....

.....

11.11 सारांश

इस इकाई द्वारा आपको उन तकनीकों या विधियों का ज्ञान हुआ होगा जिनसे सल्तनत कालीन लोग अपनी रोज़मर्रा की वस्तुओं का निर्माण या उत्पादन करते थे। कृषि के संदर्भ में अब आप लोहे के फाल युक्त हलों, बोआई की प्रणालियों, सिंचाई-साधनों, फसल-कटाई, गुहाई और ओसाई से परिचित हैं। वस्त्र उद्योग के अंतर्गत आप औटाई, धुनाई, कताई, बुनाई, रंगाई और छपाई संबंधी अध्ययन कर चुके हैं। भवन निर्माण के संदर्भ में चूना-गारा, वैज्ञानिक तरीके से बनाई गई *मेहराबों* और *गुंबद*, *मेहराबी* छतें अधिक महत्वपूर्ण हैं। कागज निर्माण और जिल्दसाज़ी नयी कलाएँ थीं। यही स्थिति *रक़ाब*, *नाल* और बारूद के संदर्भ में सैन्य तकनीकी की थी। *कलईगिरी* भी एक नया उद्यम था। काँच उत्पादन इस काल में निम्न-स्तरीय था। अब आप जान गए कि पुर्तगालियों के आने से पूर्व तक पोत निर्माण में लोहे का प्रयोग नहीं होता था। मादक द्रव्यों के उत्पादन के लिए किण्वन और आसवन प्रणाली अपनाई जाती थी।

अंत में मुसलमानों द्वारा भारत में लाई गई नई विधियों और उद्यमों को संक्षेप में दोहराएँ: *साक़िया*, *चरखा*, करघा (पैरों द्वारा संचालित), चूना-गारा, *मेहराब*, *गुंबद*, कागज और *जिल्दसाज़ी*, *रक़ाब*, *नाल*, बारूद, *कलई* और नाविक के लिए कुतुबनुमा। भारतीयों ने इन सभी को बिना किसी झिझक या विरोध के स्वीकार किया।

11.12 शब्दावली

फिटकिरी (alum) सफेद खनिज लवण जो रंगाई में उपयोगी होता है

***मेहराब* (arch)** वक्राकार संरचना

डाट पत्थर (voussoirs) वे पत्थर अथवा ईंटें जो *मेहराब* बनाने में प्रयुक्त होते हैं मुख्य पत्थर (key stone) के अतिरिक्त

कदलिकाकृत (corbelled) वह विधि जिसके द्वारा छत बनाने के लिए पत्थर के कोनों को अन्दर की तरफ निकाल कर, पत्थरों को एक के ऊपर एक रखकर खाली स्थान को भरा जाता है (देखें **खंड 4 इकाई 17**)।

गियर दाँतनुमा चक्रों का एक समूह जो दूसरे ऐसे ही समूह में फिट होकर शक्ति संचालन करता है

निमज्जन पानी के धरातल के नीचे किसी वस्तु को रखना

लूम (करघा) वस्त्र बुनाई का यंत्र

धरणिक (Lintel and beam) वह विधि जिसमें छत को बड़े पत्थर या धरनी (beam) द्वारा ढका जाता है (देखें **खंड 4 इकाई 17**)।

ट्रेडिल-लूम/पिट लूम (treadle/pit loom)	पैरों द्वारा चलने वाले लूम (करघे)
बुझा-चूना (slake-lime)	कैलशियम हाइड्रॉक्साइड $C_a(OH)_2$: यह कैलशियम ऑक्साइड पर जल की क्रिया द्वारा तैयार होता है
अनबुझा चूना (Quicklime)	कैलिशयम ऑक्साइड (C_a+O) जो कैलिशयम कार्बोनेट (चूना) को गर्म करके प्राप्त किया जाता है

11.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1) देखें उप-भाग 11.2.4

2) देखें उप-भाग 11.2.4

3) (i) × (ii) ✓ (iii) ✓ (iv) ×

बोध प्रश्न-2

1) देखें उप-भाग 11.3.1

2) देखें उप-भाग 11.3.1

3) देखें उप-भाग 11.3.2

बोध प्रश्न-3

1) देखें उप-भाग 11.4.1, 11.4.2

2) देखें भाग 11.5

बोध प्रश्न-4

1) देखें उप-भाग 11.6.1, 11.6.2

2) अ) चीन ब) 15वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध स) तुर्क

बोध प्रश्न-5

1) देखें भाग 11.9

2) देखें भाग 11.10

11.14 संदर्भ ग्रंथ

हबीब, इरफान, (1969) 'प्रेसीडेन्शियल एड्रेस', *प्रोसीडिंग्स ऑफ द इंडियन हिस्ट्री कॉन्ग्रेस*, वाराणसी.

हबीब, इरफान, (1978-79) '*टेक्नालॉजी* एंड बैरिअर्स टू सोशल चेंज इन मुगल इंडिया', *इंडियन हिस्टॉरिकल रिव्यू*, भाग V, नं. 1-2.

कैसर, ए. जान, (1982) *इंडियन रेस्पांस टू यूरोपियन टेक्नालॉजी एंड कल्चर* (दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).

11.15 शैक्षणिक वीडियो

अर्बन इकॉनॉमी एंड *टेक्नालॉजी* ड्यूरिंग द दिल्ली सल्तनत

https://www.youtube.com/watch?v=pT8Jv400e-E

बुल्स फैंचिंग वैल-वाटर। एंशियंट टेक्नॉलॉजी सिस्टम इन इंडिया एंड पाकिस्तान

https://www.youtube.com/watch?v=fTvEJDBMsSo

वाटर टेक्नॉलॉजी इन मिडिवल इंडिया-1

https://www.youtube.com/watch?v=ol3DPLXKARg

इकाई 12 नगरीय अर्थव्यवस्था तथा मुद्रीकरण*

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 सल्तनत काल में नगरों का विकास

12.3 नगरीकरण की प्रक्रिया

- 12.3.1 *इक्ता*
- 12.3.2 मुद्रीकरण
- 12.3.3 राजधानी नगर और प्रांतीय मुख्यालय
- 12.3.4 *खानकाह*
- 12.3.5 *सराय, थाना* (सैन्य चौकी) और किले
- 12.3.6 मस्जिद और मदरसे
- 12.3.7 *बाज़ार,* मंडियाँ
- 12.3.8 *कारखाना*

12.4 सल्तनत काल में नगरीय उत्पादन

12.5 दास तथा *कारखाने*

12.6 सारांश

12.7 शब्दावली

12.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

12.9 संदर्भ ग्रंथ

12.10 शैक्षणिक वीडियो

12.0 उद्देश्य

मध्यकालीन भारत का नगरीय इतिहास अत्यन्त महत्वपूर्ण और रोचक विषय है। इस इकाई में आप मध्यकाल में नगरीय अर्थव्यवस्था और नगरों के विकास का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- दिल्ली सल्तनत काल की दो परस्पर संबंधित गतिविधियों के विकास को जान सकेंगेः
  - क) शहरों के आकार और संभवतः शहरों की संख्या में भारी वृद्धि को,
  - ख) शिल्प उत्पादन के अत्यधिक विस्तार को।
- सल्तनत काल में नगरीकरण की प्रक्रिया के विकास को जान सकेंगे, और
- दासता तथा दास-उत्पादन के विकास को समझ सकेंगे।

12.1 प्रस्तावना

उपलब्ध समकालीन प्रमाणों से पता चलता है कि गौरी के आक्रमण के समय नगरीय अर्थव्यवस्था पतन की स्थिति में थी। सल्तनत की स्थापना से पहले की शताब्दियों में नगरों की संख्या कम और आकार

* प्रो. शीरीन मूसवी, सेंटर ऑफ एडवांस्ड स्टडीज इन हिस्ट्री, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़; और प्रो. आभा सिंह, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

यह इकाई हमारे पूर्ववर्ती पाठ्यक्रम ई.एच.आई.-03: *भारतः 8वीं सदी से 15वीं सदी तक*, खंड 6, इकाई 21 और एम.एच.आई.-10: *भारत में नगरीकरण*, खंड 4b, इकाई 17 से ली गई है।

छोटा था। इतिहासकार डी. डी. कोसाम्बी के अनुसार राजधानी भी तम्बुओं का एक ऐसा शहर था जो एक स्थान से दूसरे स्थान प्रस्थान करता रहता था। उच्च शासक वर्ग सेना के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान भ्रमण करता रहता था जबकि निम्न कुलीन वर्ग पूर्णतः गाँवों में सीमित था। इतिहासकार आर. एस. शर्मा भी शहरों के ह्रास के इस दृष्टिकोण का समर्थन करते हैं। उन्होंने पुरातात्विक खुदाई से प्राप्त प्रमाणों के विस्तृत शोध के आधार पर शहरों के ह्रास के मत को पुनः स्थापित किया है।

शहरों के ह्रास संबंधी मत की पुष्टि इस काल के मन्द व्यापार से भी होती है। इस काल में सोने-चाँदी के सिक्कों की भारी कमी तथा विदेशी सिक्कों की पूर्ण अनुपस्थिति भी यह संकेत देती है कि विदेशी व्यापार बहुत निम्न अवस्था में था। किसी एक क्षेत्र से प्राप्त सिक्कों के भण्डार में दूसरे क्षेत्रीय राज्यों के सिक्कों की अनुपस्थिति भी यह दिखाती है कि आंतरिक व्यापार भी बहुत मन्द अवस्था में था। दिल्ली सल्तनत की स्थापना के लगभग तुरंत बाद यह स्थिति तेजी से बदलती दिखाई देती है। पुरातात्विक साक्ष्य और सिक्कों के अध्ययन साहित्यिक स्रोतों के इन प्रमाणों की पुष्टि करते हैं कि सल्तनत काल में शहरों का विकास हुआ और व्यापार में वृद्धि हुई। इन प्रमाणों के आधार पर इतिहासकार मोहम्मद हबीब ने 'शहरी क्रांति' के सिद्धांत का प्रतिपादन किया।

12.2 सल्तनत काल में नगरों का विकास

शहरों की संख्या और आकार में वृद्धि के विषय में उपलब्ध प्रमाणों की चर्चा करने से पहले, आइए हम यह देखें कि शहर या नगर का क्या तात्पर्य है। शहर की दो साधारण परिभाषाएँ हैं: 1) आधुनिक सामान्य परिभाषा के अनुसार 5000 से अधिक जनसंख्या वाली कोई बस्ती, 2) एक ऐसी बस्ती जहाँ अधिकांश जनसंख्या (लगभग 70 प्रतिशत से ऊपर) कृषि के अतिरिक्त अन्य व्यवसायों में संलग्न हो। यह दोनों परिभाषाएँ एक दूसरे की पूरक नहीं हैं परंतु द्वितीय परिभाषा बहुत छोटे शहरों पर भी लागू हो सकती है।

प्राचीन काल के लिए जिस प्रकार के पुरातात्विक साक्ष्य उपलब्ध हैं, वे 13वीं-15वीं शताब्दी के लिए नहीं मिलते क्योंकि मध्यकालीन पुरातत्व के क्षेत्र पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया है। इस काल के ग्रन्थ नगरों के विकास की पुष्टि करते हैं। समकालीन ग्रन्थों में जिन प्रमुख नगरों का विवरण मिलता है वे हैं – दिल्ली (राजधानी), मुल्तान, अन्हिलवाड़ा (पाटन), खम्भात, कड़ा, लखनौती और दौलतबाद (देवगिरि)। लाहौर एक बड़ा शहर था परन्तु 13वीं शताब्दी के मंगोल आक्रमणों के बाद इसका ह्रास हुआ। किन्तु 14वीं शताब्दी में यह फिर समृद्ध हो गया। इस काल में शहरों की जनसंख्या के लिए कोई निश्चित जानकारी नहीं मिलती परन्तु ऐसे उल्लेख अवश्य मिलते हैं जिनसे पता चलता है कि उस समय के मानकों से वे काफी बड़े शहर थे। इब्न बतूता, जो 1330 में दिल्ली आया, लिखता है कि दिल्ली, जबकि मुहम्मद तुगलक वहाँ की बड़ी जनसंख्या दौलताबाद स्थानांतरित कर चुका था तब भी सम्पूर्ण पूर्वी इस्लामिक साम्राज्यों में आकार और जनसंख्या में सबसे बड़ा शहर था। दौलताबाद के विषय में भी वह कहता है कि वह आकार में इतना बड़ा था कि दिल्ली का मुकाबला कर सकता था। इस काल में कुछ नए शहर भी अस्तित्व में आए जैसे राजस्थान में झाइन जिसका नाम अलाउद्दीन खलजी के काल (1296-1316) में '*शहर नौ*' (नया शहर) रखा गया।

नगरीय विकास के उत्तरदायी कारण

एक अपरिचित नए प्रदेश में जाने वाले आक्रमणकारियों के लिए स्वाभाविक था कि वे इधर-उधर बिखरे रहने की अपेक्षा संयुक्त रूप से रहें। इसलिए प्रारंभिक चरणों में तुर्क आक्रमणकारी अपने घुड़सवारों के साथ अपने *इक्ताओं* के मुख्यालयों में रहने लगे। प्रारंभिक अवस्था में *इक्ता* मुख्यालयों में *मुक्ती*, उसके घुड़सार, उन पर निर्भर अन्य वर्ग, नौकर-चाकर और इन सभी के परिवार केन्द्रित थे और यह एक बड़े सैनिक शिविरनुमा शहर थे। वास्तव में इस काल के अधिकांश शहरों का समकालीन स्रोतों में *इक्ता* मुख्यालयों के रूप में वर्णन किया गया है। उदाहरण के लिए – हांसी, कड़ा, अन्हिलवाड़ा, आदि। इन शहरों को बनाए रखने के लिए इन्हें अनाज और आवश्यकता की वस्तुएँ उपलब्ध कराना पड़ता था। प्रारंभ में *खराज* (भूमिकर) की वसूली के लिए सैनिक आस-पास के गाँवों पर धावा बोलते थे अथवा लूट-मार करते थे। लेकिन धीरे-धीरे चौदहवीं शताब्दी तक, जैसा कि मोरलैण्ड कहता है,

नकद धन के रूप में कर वसूली की व्यवस्था स्थापित हुई। अब किसानों से भूमिकर नकद धन के रूप में माँगा जाता था। अब किसान खेतों पर ही अपना अनाज बेचने के लिए मजबूर हो जाते थे। व्यापारीगण शहरों की आवश्यकताओं की आपूर्ति करते थे जिससे व्यापार का ऐसा सिलसिला चला जिसे हम 'प्रेरित व्यापार' ('Induced trade') कहते हैं।

एक भिन्न सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से आने वाले इस नये शासक वर्ग की आराम और विलासिता की आवश्यकताएँ भी भिन्न थीं, वे फारसी कविता और गाने, भिन्न प्रकार के नृत्य, किताबें, पहनने के लिए रेशमी कपड़े तथा *मेहराबी* (न कि पत्थरों से निर्मित स्थूलकाय) भवन निर्माण चाहते थे। उस काल के मानदण्डों के अनुसार इस वर्ग के पास अपार संसाधन थे। अतः वे इनसे अपनी रुचि के अनुसार आराम और विलासिता की वस्तुएँ प्राप्त करना चाहते थे। इसलिए इस्लामी संस्कृति के केन्द्रों से अप्रवास को प्रोत्साहन मिला। इन अप्रवासियों में, जैसा कि इसामी ने लिखा है, केवल सैनिक ही नहीं बल्कि, शिल्पी, कारीगर, गायक, नृतक, संगीतज्ञ, कवि, हकीम, ज्योतिषी और कार्मिक थे। अप्रवासी कुशल कारीगरों ने संभवतः नई तकनीकों और तकनीकी का प्रयोग किया (विस्तृत अध्ययन के लिए देखें **इकाई 11**)। समय के साथ-साथ भारतीय कारीगरों ने भी नये शिल्पों के विषय में सीखा।

बोध प्रश्न-1

1) मध्यकाल में शहरों के विकास के लिए उत्तरदायी कारक बताइए।

.....

.....

.....

2) निम्नलिखित कथनों पर सही (✓) अथवा गलत (×) का चिह्न लगाइए:

i) सन् 1200 से पहले के प्राप्त सिक्कों के भण्डारों में सामान्यतः विदेशी सिक्के नहीं मिलते हैं। ( )

ii) दिल्ली सल्तनत के सम्पूर्ण काल में लाहौर एक बड़ा शहर रहा। ( )

iii) इब्न बतूता दिल्ली की जनसंख्या के विषय में अपना अनुमान बताता है। ( )

12.3 नगरीकरण की प्रक्रिया

दिल्ली सल्तनत के काल में कतिपय नई संस्थाएँ अस्तित्व में आईं। *खानकाह* (*जमातखाना*), *सराय, थाना, मदरसा* (शिक्षण संस्थाएँ), शाही दरबार, *दारूल शिफा* (अस्पताल) और *बाजार* – जिसने नगरीकरण की प्रक्रिया तथा नगरीय केंद्रों के विकास को सुगम तथा त्वरित किया। तथापि, ये कारक अनन्य नहीं थे। बहुधा अनेक कारकों ने एक साथ मिलकर किसी विशेष नगर के अभ्युदय/समृद्धि को सफल बनाया।

12.3.1 *इक्ता*

विभिन्न सूबे (*विलायत और खित्ता/इक्ता*) कतिपय सक्रिय *अमीरों*/गवर्नरों के अधीन यथा समय प्रसिद्ध नगरीय केंद्रों के रूप में उभरे। *इक्ता* एक भूभाग था जो मुख्य रूप से *अमीरों* को उनके क्षेत्राधिकार वाले इलाकों में आवंटित किया गया था। चूँकि ये *इक्ता अमीरों* के अधिकार में तब तक रहते थे जब तक वे अपनी-अपनी जिम्मेदारियों का निर्वहन करते रहते थे और *इक्तादारों* से यह आशा की जाती थी कि वे कृषि के विस्तार तथा व्यापार को समृद्ध करने का कार्य करेंगे (*इक्ता* से ही *अमीरों* और उनके सवारों को राजस्व की प्राप्ति होती थी। समय बीतने के साथ ये *इक्ता* प्रमुख नगरों और कस्बों में विकसित हो गए। आन्द्रे विंक तर्क देते हैं कि 'दिल्ली सल्तनत प्रभावी रूप से अपने *इक्ताओं* का योग था – जिसकी परिभाषा स्थानीय भू-भागीय इकाइयों के रूप में नहीं अपितु, एक सैन्य नगरीय केंद्र (*खित्ता*) के रूप में की गई...' (विंक 1999: 212)। आन्द्रे विंक के विश्लेषण का इतिहासकारों ने प्रतिवाद किया है, इतना होने पर भी यहाँ जो महत्वपूर्ण है वह है सल्तनत काल के दौरान नगरीय केंद्रों के विस्तार में निभायी गई *इक्ता* की भूमिका। जब मुहम्मद गौरी ने 1196 में बयाना का *खित्ता* मलिक बहाउद्दीन तुगरिल को प्रदान किया तो उसने इस क्षेत्र का विस्तार किया

तथा एक नए नगर सुल्तानकोट (आधुनिक बयाना) की स्थापना की और पुराने किलेबंद ताहनगढ़ के स्थान पर इसे अपना मुख्यालय बनाया। उसने व्यापारियों, विद्वानों को आमंत्रित किया तथा उनके लिए घरों का निर्माण कराया। बहाउद्दीन ने सुल्तानकोट (1204) में जामी मस्जिद और बयाना में एक ईदगाह का निर्माण कराया जो दिल्ली की कुतब मस्जिद के बिल्कुल सदृश्य था। ठीक इसी तरह, मिन्हाज लिखता है कि कड़ा और मानिकपुर महत्वपूर्ण प्रशासनिक केन्द्र होने के कारण शीघ्र ही व्यापारिक गतिविधियों के केंद्र के रूप में उभरे जहाँ खुरासान तथा हिन्दुस्तान के प्रत्येक हिस्से से व्यापारी और प्रसिद्ध व्यक्ति (*तुज्जार-ओ मारिफ*) आते थे। इब्न बतूता इन नगरों को दिल्ली को गेहूँ, चावल, चीनी और कपड़ा की आपूर्ति करने वाला मुख्य केंद्र कहता है। कोल (आधुनिक अलीगढ़) का उदय एक महत्वपूर्ण *विलायत* के रूप में हुआ और इल्तुतमिश के शासन के काल से जब से निज़ामुल मुल्क जुनैदी को यह अपने *इक्ता* में मिला था इसकी जिम्मेदारी बहुधा शासन के प्रमुख *वज़ीरों* को सौंपी जाती थी। बरन (बुलंदशहर) भी एक महत्वपूर्ण नगर के रूप में उभरा। ऐबक ने इसे इल्तुतमिश को दिया था। प्रसिद्ध इतिहासकार जियाउद्दीन बर्नी भी इसी स्थान से संबंधित थे। बदायूँ एक अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्र था जिसने महत्ता हासिल की। हसन निज़ामी (1998: 245) बदायूँ का उल्लेख 'हिन्दुस्तान के प्रमुख नगरों में एक' के रूप में करता है। पूरे सल्तनत काल में यह एक दुर्ग तथा स्पंदनमान दास बाजार के साथ एक प्रमुख *इक्ता* और प्रमुख प्रशासनिक केंद्र बना रहा। अपनी सामरिक अवस्थिति, जिसकी परिधि पर उत्पाती कटेहरिया क्षेत्र स्थित था, के कारण खलजियों के काल तक यह एक महत्वपूर्ण सैन्य नगर बना रहा (*थाना* संबंधी भाग देखिए)। यह नगर सल्तनत कालीन प्रारम्भिक स्मारकों से परिपूर्ण है। इल्तुतमिश ने स्वयं अपनी गवर्नरशिप के दौरान यहाँ *ईदगाह* का निर्माण कराया। इल्तुतमिश के शासनकाल के अनेक स्मारक रूक्नुद्दीन (जामा मस्जिद; 1223) और नसीरूद्दीन महमूद (सुल्तानी दरगाह; 1229) के तत्वावधान में बनवाए गए जो अभी भी विद्यमान हैं। मुल्तान, कालपी, जौनपुर गौड़/पान्डुआ, मान्डू, अहमदाबाद और बीदर ने भी एक बार प्रांत के राजधानी शहर का दर्जा हासिल करने के बाद से महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया।

12.3.2 मुद्रीकरण

सल्तनल काल में बाहरी दुनिया के साथ भारतीय व्यापार की गति और तीव्र हो गई जिसके परिणामस्वरूप बहुमूल्य धातुओं का प्रवाह बढ़ा। कैम्बे और मुल्तान व्यापारिक गतिविधियों के मुख्य केंद्रों के रूप में उभरे और इसी प्रकार मुल्तानी, साहा तथा गुजराती व्यापारियों का महत्व भी बढ़ा। इन नगरों में ईरान और मध्य एशिया के व्यापारियों की चहल-पहल बनी रहती थी। ज़ियाउद्दीन बरनी (2015: 73) ने मुल्तानियों और साहों की समृद्धि पर टिप्पणी की है कि '*मलिक*, *खान* और उस समय के विशिष्ट जन अत्यधिक उदारता, दान देने और उपहार देने के कारण कर्ज से दबे रहते थे... दिल्ली के मुल्तानी और साह दिल्ली राज्य क्षेत्र के *अमीरों* तथा *मलिकों* की सम्पदा के कारण अत्यधिक समृद्ध हो गए थे। उन्होंने मुल्तानियों और साहों से अधिकतम संभव ऋण लिया और ऋणदाताओं को अपने *इक्ताओं* से अतिरिक्त राशि के इनाम के साथ भुगतान किया। जब कभी *खान* या *मलिक* किसी पार्टी का आयोजन करते थे और अतिथियों के रूप में विशिष्ट जनों को बुलाते थे उसके अधिकारी मुल्तानियों तथा साहों के पास पहुँच जाते थे, उन्हें अपने नाम की रसीद देकर ब्याज पर ऋण लेते थे...'। इसने मौद्रीकरण की गति को और तीव्र कर दिया जो सल्तनत काल में नगरीकरण की गति को बढ़ाने में बुनियादी कारक था। यह प्रक्रिया पहली बार मकरान क्षेत्र में दृष्टिगोचर होती है, वह क्षेत्र जिसे अरबों ने पहली बार जीता था। इसने शीघ्र ही अरब व्यापारियों को आकृष्ट किया तथा मकरान की चरवाहा अर्थव्यवस्था इस क्षेत्र में नगरीय केंद्रों के विकास के साथ अत्यधिक मौद्रीकृत अर्थव्यवस्था में परिवर्तित हो गई। दो कारकों ने मौद्रीकरण की प्रक्रिया में विशेष योगदान दिया: (क) चूँकि शासक वर्ग मुख्यतः नगरों में रहने वाला था इसलिए अधिशेष की बड़ी मात्रा नगरों में आई; (ख) राज्य द्वारा यह दबाव डालने पर कि भू-राजस्व का भुगतान नकद किया जाए के कारण शासक वर्ग के हाथ में पर्याप्त मात्रा में नकदी आ गई (कहा जाता है कि अलाउद्दीन ने भू-राजस्व के रूप में उत्पादन का आधा भाग अपने खजाने में जमा किया) जिसने तेरहवीं-चौदहवीं सदियों में नगरीकरण की प्रक्रिया को भी तेज कर दिया।

12.3.3 राजधानी नगर और प्रांतीय मुख्यालय

कुछ नगर राजधानी बनने के पश्चात् अधिक जीवंत बन गए। ग़ज़ना और ग़ौर के शासकों के संरक्षण

में लाहौर पुष्पित हुआ। मुहम्मद बिन साम ने लाहौर को अपनी शीतकालीन राजधानी बनाया जो बाद में सल्तनत की राजधानी बना। हसन निज़ामी इसकी सुंदर इमारतों तथा भवनों की भूरि-भूरि प्रशंसा करता है। ठीक इसी प्रकार जब कुतबुद्दीन ऐबक ने लाहौर को अपनी राजधानी बनाया तो इसने कॉस्मोपॉलिटन प्रकृति ग्रहण कर ली। हसन निज़ामी (1998: 279) लिखता है कि 'यह सर्वगुणसंपन्न लोगों का *किबला* (आदरणीय) था, *अमीरों* और उदारवृत्त भद्रजनों का *काबा* (पूज्य स्थल) था, दयावान और अपरिग्रह करने वाले व्यक्तियों का केंद्र था... यह संन्यासियों तथा श्रद्धालुओं का शरणस्थल था... महान् सूफ़ी संतों का वास स्थान था'। जब सुल्तान नसीरूद्दीन कुबाचा ने 1210 में उच्छ को अपनी राजधानी (*हजरत-ए उच्छ*) बनाया तो इसने सभी दिशाओं से व्यापारियों, शिल्पकारों, *अमीरों* तथा विद्वानों को अपनी ओर आकृष्ट किया। इब्न बतूता, जिसने 14वीं सदी में यात्रा की थी, इसे बहुत ही बड़ा नगर बताता है जहाँ 'सुंदर बाजार और भवन' थे (गिब्ब, 1929: 188)।

12.3.4 *खानकाह*

आज हम *खानकाह* का संबंध सूफियों के केन्द्रीय स्थल या *जमातखाना* से करते हैं। तथापि, सल्तनत की स्थापना के आरम्भिक चरणों में यह विश्रामालय से अधिक संबंधित था। ग्यारहवीं सदी तक अरब और ईरान की दुनिया में *रिबात* सामान्य रूप से प्रयोग में था। बाद में, खुरासान और मध्य एशिया में *खानकाह* ने इसका स्थान ले लिया। अरब देशों में यात्रियों को विश्राम देने के लिए निर्मित आवास के लिए *रिबात* शब्द का प्रयोग अभी भी किया जाता है (सिद्दीकी 2012: 29)। इन दोनों के बीच अंतर बताते हुए प्रसिद्ध सुहरावर्दी संत शेख जलालुद्दीन बुखारी (1199-1291) लिखते हैं कि *'रिबात* सामान्यतः व्यापारियों और अन्य मानवतावादियों के द्वारा उनके वैध धन से निर्मित कराया गया था... उनसे भिन्न, भारत में *खानकाह* का निर्माण राज्य के द्वारा करों से संग्रहित धन से कराया गया था जिसकी *शरिया* से अनुमति नहीं थी' (सिद्दीकी 2012: 29)। मिन्हाज-ए सिराज जुज़जानी भी लिखता है कि *'खानकाहों* का निर्माण भारत के बाहर के मानवतावादियों द्वारा अपने धन से यात्रियों के ठहरने के लिए कराया गया था' (सिद्दीकी 2012: 28)। सादीदुद्दीन मुहम्मद ऑफी (1171-1242) हमें बताता है कि लाहौर में नियुक्त गज़नवी के *अमीर* ने यात्रियों के लिए एक *खानकाह* का निर्माण कराया (सिद्दीकी 2012: 28)। गर्देजी वर्णन करता है कि मरगला का *रिबात* (इस्लामाबाद के समीप) इतना विशाल था कि जब सुल्तान मसूद की सेना मरगला (1041) में विद्रोह कर रही थी तो सुल्तान ने *मरगला* के *रिबात* में अपने अंगरक्षकों तथा लड़ाकू हाथियों के साथ शरण ली (सिद्दीकी 2012: 5-6)। इस प्रकार, आरम्भ में *खानकाह / रिबात* 'सूफ़ी स्थल नहीं थे अपितु सार्वजनिक उपयोग की संस्था' थे। इन *खानकाहों* का प्रबन्ध *शेख अल-इस्लाम* के द्वारा किया जाता था और इसके रख-रखाव के लिए राज्य द्वारा गाँव दान में दिए गए थे। दिल्ली सल्तनत के आरम्भ से ही मुल्तान सुहरावर्दी सूफियों का मुख्य केंद्र रहा है। उनके संरक्षक संत शेख बहाउद्दीन ज़करिया (1182-1262) ने नगर में अपना *खानकाह* स्थापित किया और दिल्ली के सुल्तानों से समर्थन प्राप्त किया। इल्तुतमिश ने उसे *शेख-उल इस्लाम* की पदवी दी। 1247 में जब मंगोल खान सुली नूईन ने मुल्तान पर घेरा डाला तो शेख ने ही मंगोल सेना के साथ शांति स्थापना हेतु बातचीत की। हांसी का उदय चिश्ती सूफियों के मुख्य केंद्र के रूप में हुआ जहाँ प्रसिद्ध चिश्ती सूफ़ी कुतबुद्दीन मुनव्वर का डेरा था। अफीफ बताता है कि जब फिरोज़ ने हिसार फिरोज़ा की स्थापना की तो उसने कुतबुद्दीन मुनव्वर के उत्तराधिकारी शेख नूरूद्दीन से नगर को आशीर्वाद देने का आग्रह किया और एक *खानकाह* का निर्माण कराने तथा इसका खर्च वहन करने का वायदा किया जिसे शेख ने विनम्रतापूर्वक अस्वीकार कर दिया। इब्न बतूता बताता है कि, 'महत्वपूर्ण व्यापारिक नगर होने के अलावा हांसी अत्यधिक परिष्कृत, सुगठित तथा आबादी वाला नगर था जो दीवारों से घिरा हुआ था' (गिब्ब 1929: 193)। इब्न बतूता ने अमरोहा और धार के *खानकाहों,* जिनका निर्माण मुहम्मद बिन तुगलक ने कराया था, का भी उल्लेख किया है। इब्न बतूता लिखता है कि सिंध और पंजाब के क्षेत्र में मुहम्मद तुगलक ने चालीस *खानकाहों* की जिम्मेदारी *शेख-उल इस्लाम* को सौंपी थी (सिद्दीकी 2012: 30)। चिश्ती सूफ़ी हमीदुद्दीन नागौरी की लोकप्रियता के कारण एक छोटा सा कस्बा नागौर ज्ञान और वाणिज्य के एक बड़े केंद्र के रूप में विकसित हुआ। ठीक इसी प्रकार, *शेख-उल इस्लाम फरीदुद्दीन गंज-ए शकर* के निवास के कारण अजोधन एक महत्वपूर्ण कस्बा बनकर उभरा। अफीफ (जौहरी 2001: 187) बताता है कि केवल दिल्ली में 'यात्रियों के लाभ और सुविधा के लिए सुल्तान

ने एक सौ बीस *जमातखानों* का निर्माण कराया था'। सूफ़ी *जमातखाना* भी ज्ञान के केंद्र के रूप में उभरा जिसने धर्म और दर्शन पर विचार-विमर्श के लिए विद्वानों को आकृष्ट किया। इसने मिली-जुली (हिन्दू-मुस्लिम) परम्परा के विकास को भी बढ़ावा दिया। सूफ़ी, विशेषकर चिश्ती, श्वांस नियंत्रण (*पस-ए अन्फास*) के योग और यौगिक अभ्यासों से अत्यधिक प्रभावित थे। संस्कृत की रचना *अमृत कुंड*, जिसका संबंध योगिक अभ्यासों और दर्शन से है, का अनुवाद फारसी में *हौज अल-हयात* शीर्षक से हुआ। प्रसिद्ध सूफ़ी संत शेख अब्दुल हक रदौली और शेख अब्दुल कुद्दुस गंगोही *हौज अल-हयात* पढ़ाते थे तथा श्वांस नियंत्रण का अभ्यास शिष्यों को कराते थे। शाहजहाँ के शासनकाल में मुल्ला शाइदा अपनी *सैर-ए कश्मीर* में लिखते है कि गोरखपंथी योगी योगिक अभ्यास करने में मुस्लिम सूफियों के प्रमुख मार्गदर्शक थे। स्पष्ट है कि दिल्ली सल्तनत की स्थापना के प्रारम्भिक चरण में सूफ़ी संतों तथा *उलमा* के कार्यकलापों ने ऐसे क्षेत्रों में और उसके आसपास के क्षेत्रों में चतुर्दिक नगरीय केंद्र के अभ्युदय को सुगम बनाया जहाँ उन्होंने अपने *खानकाह* स्थापित किए थे।

12.3.5 *सराय, थाना* (सैन्य चौकी) और किले

व्यापारियों और यात्रियों के लिए विश्रामालय के अर्थ में *सराय* शब्द का प्रयोग पहली बार सोलहवीं सदी में हुआ। किंतु इस्लामी जगत में *सराय* शब्द का प्रयोग किला महल के अर्थ में हुआ था। ऑटोमन सुल्तान अपना दरबार *सराय हुमायूँ* में करते थे, ठीक इसी प्रकार तैमूर ने किश में एक महल का निर्माण कराया था जिसे *अक सराय* (श्वेत महल) कहते थे (बॉसवर्थ 1997: 46)। दिल्ली सुल्तानों के अधीन भी इसका यही अर्थ था और व्यापक रूप से इसका प्रयोग 'शाही महल या धनाढ्य व्यक्ति के भवन' के रूप में किया जाता था (सिद्दीकी 2012: 30)। शेख निज़ामुद्दीन औलिया ने सुल्तान इल्तुतमिश के महल को *सराय सुल्तानी* कहा था। ज़ियाउद्दीन बरनी ने भी अलाउद्दीन खलजी के महल को *सराय* कहा था (सिद्दीकी 2012: 30-31)। आई. एच. सिद्दीकी तर्क देते हैं कि *कारवाँ सराय* का पहला उल्लेख सिकन्दर लोदी के शासनकाल में मिलता है जब मथुरा के बाहर उसके द्वारा यात्रियों के लिए एक *कारवाँ सराय* के निर्माण का विवरण मिलता है (सिद्दीकी 2012: 31)। तथापि, शम्स सिराज अफीफ तीर्थयात्रियों के ठहरने और विश्राम के लिए '*सराय*' (विश्रामालय) और *खानकाह* के निर्माण की बात करता है। दूरस्थ और असुरक्षित वन क्षेत्रों में इस प्रकार निर्मित इन *सरायों* के साथ बहुधा *थाना* होता था और इसमें सैन्य अधिकारी (*शिकदार*) तैनात किया जाता था। इनमें से कई बसावटें टाउनशिप/*कस्बा* में विकसित हो गईं (सिद्दीकी 2012: 31)। अफीफ़ लिखता है कि जब सुल्तान फिरोज ने *खानकाह* का निर्माण कराया तो उसने इच्छा व्यक्त की थी कि 'सभी दिशाओं से (विश्व के भागों से) तीर्थयात्रियों को आना चाहिए और *सराय* में ठहरना चाहिए' (अफीफ 2001: 187)।

थाना नए उदीयमान *कस्बों* के मुख्य प्रतीक बनकर उभरे। बरनी सुल्तान ग़ियासुद्दीन बलबन के शासन (1266-87) के वृत्तान्त में बताता है कि उपद्रवी क्षेत्रों में कानून और व्यवस्था बनाए रखने के लिए मोटे रूप में पुलिस चौकियों के रूप में *थाने* स्थापित किए गए। बलबन ने दिल्ली के समीप विद्रोही मेवातियों को दूर रखने के लिए देवपालगीर *थाना* की स्थापना की थी। उसने आसपास के जंगल को कटवा दिया तथा वहाँ अफगान चौकी की स्थापना की। कटेहरिया क्षेत्र के मुख्यालय अमरोहा के समीप इसी प्रकार का एक अन्य *थाना* अफगानपुरा था। बलबन द्वारा अफगान सैनिकों के साथ स्थापित अन्य इसी प्रकार के थाने जलाली, काम्पिल, पटियाली, भोजपुर, शम्साबाद और बोगाँव थे जो गंगा-यमुना *दोआब* में थे (सिद्दीकी 2012: 31)। बरनी लिखता है कि 'उसने (बलबन में) जलाली के किले का निर्माण कराया तथा इसे अफगानों को सौंप दिया। डकैतों के स्वर्ग *थाना* में बदल गए। जलाली जो डाकुओं के अभ्यारण्य के रूप में जाना जाता था... मुसलमानों का घर और एक सुरक्षित सड़क बन गया...' (बरनी, 2015: 37)। ठीक इसी प्रकार चम्बल घाटी के डकैत प्रवण क्षेत्र से निपटने के लिए सुल्तान सिकन्दर लोदी (1489-1517) ने हतकान्त गाँव के समीप एक *थाना* का निर्माण किया जो बाद में शेरशाह के शासन के अंतर्गत एक प्रमुख नगरीय केंद्र के रूप में उभरा। शेरशाह ने स्वयं सरहिन्द के बारह हजार प्रशिक्षित अफगानों की एक विशाल अफगान बस्ती स्थापित की तथा उन्हें हतकान्त गाँव में बसा दिया। ये सभी *थाना शीघ्र* ही प्रमुख नगरीय केंद्रों के रूप में उभरे। *थाना* काम्पिल इतना प्रमुख केंद्र बनकर उभरा कि अलाउद्दीन खलजी (1296-1316) ने वहाँ एक सुदृढ़ किला का निर्माण कराया जिसे इब्न बतूता ने *दोआब* क्षेत्र में सबसे अभेद किलों में से एक कहा है। मोटे रूप से इन थानों की स्थापना जंगलों को काटकर की गई थी, इनके साथ-साथ

मस्जिदों, मदरसों और कभी-कभी सूफ़ी *खानकाहों* का भी निर्माण किया गया था। इसका महत्वपूर्ण उदाहरण जलाली है। इन *थानों* में से कुछ की स्थापना दूरवर्ती स्थानों, विशेषकर राजमार्गों, पर की गई थी (सिद्दीकी 2012: 32)। बलबन ने किलों और *थानों* की स्थापना करके तथा अफगानों को बसाकर मेवात तथा *दोआब* (कटेहर) क्षेत्र को पूरी तरह छान मारा और इस क्षेत्र को राजमार्ग के लूटेरों से लगभग मुक्त कर दिया (बरनी 2015: 37)। जब 15वीं सदी में कालपी एक महत्वपूर्ण केंद्र बनकर उभरा तो *मुक्तियों* ने जंगल काटकर कई *थानों* का निर्माण किया जो 16वीं सदी में फलते-फूलते *कस्बों* में विकसित हो गए। यद्यपि बदायूँ पूरी तरह से एक *थाना* नहीं था, लेकिन पूरे खलजी काल में यह सैन्य चौकी बना रहा जहाँ बाद में मुहम्मद बिन तुगलक ने सैन्य अड्डे को समाप्त किया।

थानों के साथ बहुधा किला जुड़ा होता था। तथापि *अमीरों* और सुल्तानों ने *थानों* से अलग स्वतंत्र रूप से भी कई किलों का निर्माण कराया और नए नगरों की आधारशिला रखी। फिरोज़ तुगलक इस प्रकार के निर्माण-उद्यमों के लिए विशेषरूप से जाना जाता है। उसने न सिर्फ हिसार फिरोज़ा की आधारशिला रखी अपितु कई किला *कस्बों* – फतेहाबाद, फिरोज़ाबाद, हरनीखेड़ा, तुगलकपुर कासना, तुगलकपुर मुलूक मकुट और जौनपुर – का निर्माण कराया।

12.3.6 मस्जिद और *मदरसे*

सभी नवस्थापित *कस्बों* और *थानों* में महत्वपूर्ण संरचना के अंग के रूप में भी *मदरसों* का अभ्युदय हुआ। बलबन ने *कस्बों* और *थानों* में *मदरसों* के विकास में व्यापक योगदान किया। राजमार्गों और कटेहर (रूहेलखंड) क्षेत्र में दिल्ली के आसपास *थाने* स्थापित किए गए तथा प्रत्येक *थाने* में सैन्य कार्मिकों के बच्चों की शिक्षा के लिए *मदरसे* स्थापित किए गए। आई. एच. सिद्दीकी टिप्पणी करते हैं कि 'गंवार और असभ्य अफगानों' के बच्चे इसके परिणामस्वरूप 'संस्कृतिकरण की प्रक्रिया' से इतना लाभान्वित हुए कि अफगानों की अगली पीढ़ी खलजियों और तुगलक सुल्तानों के अधीन उच्च पद प्राप्त करने लगी (सिद्दीकी 2012: 140)। मदरसे के द्वार सभी वर्गों के लिए खुले हुए थे, यहाँ तक कि हिन्दू बच्चे भी फारसी और लोकप्रिय विज्ञानों में शिक्षा ग्रहण करने लगे। इस प्रकार *मदरसा* 'उर्ध्वमुखी सामाजिक गतिशीलता बढ़ाने' का साधन था। सुहरावर्दी सूफ़ी संत शेख जलालुद्दीन बुखारी का शिष्य रतन नाई, गणना में दक्ष था और मुहम्मद बिन तुगलक के शासन (1325-51) के दौरान ख्याति अर्जित कर अभिजात्य वर्ग में शामिल हो गया। ठीक इसी प्रकार, मौलाना अलाउद्दीन उसूली के उपदेशों के कारण बदायूँ ने ख्याति और प्रसिद्धि प्राप्त की। उस समय के प्रसिद्ध सूफ़ी संत और महान् विद्वान शेख निज़ामुद्दीन औलिया उनके शिष्य थे। उनकी विद्वत्ता के कारण बदायूँ का छोटा सा *कस्बा* प्रसिद्ध हो गया।*दोआब* और मेवात क्षेत्र में नवस्थापित *थानों,* जिनके साथ *मदरसों* और मस्जिदों की भी स्थापना हुई, ने इन सैन्य चौकियों के एक पूर्ण टाउनशिप के रूप में विस्तार तथा विकास को सुगम बनाया। कालपी और उसके आसपास के क्षेत्रों का मुख्य रूप से इसी प्रक्रिया के परिणामस्वरूप विकास हुआ।

इब्न बतूता वर्णन करता है कि केवल दिल्ली में *मदरसों* की संख्या 1000 थी। शुरू में ही मुहम्मद गौरी के शासन में उसके अमीर कुतबुद्दीन ऐबक ने अपने संरक्षक सुल्तान की ओर से दिल्ली में *मदरसा-ए मुइज़ी* की स्थापना की। जब 1210 में वह सुल्तान बना तो उसने एक और *मदरसा-ए फिरोज़ी* की स्थापना अपनी राजधानी फिरोज़कोह में की। इल्तुतमिश ने दिल्ली में *मदरसा-ए नासीरिया* की स्थापना की तथा उन्हें वित्तीय सहायता प्रदान की। फिरोज़ तुगलक (1351-88) ने दो विशाल *मदरसों* – *मदरसा-ए शाहजादा-ए बुज़ुर्ग* जो सीरी के निकट था और *मदरसा-ए फिरोज़ शाही* की स्थापना की, जिसमें छात्रों के लिए एक पृथक छात्रावास *हौज खास* में बनाया गया था। इस प्रकार दिल्ली की प्रतिष्ठा इतनी बढ़ी कि अमीर खुसरों ने शिक्षा के क्षेत्र में दिल्ली की तुलना बुखारा से की है।

दूसरे क्षेत्रों में भी कुतबुद्दीन ऐबक ने विशेषकर उन *कस्बों* में जो मुइज़ी *अमीर* के रूप में 1192 में उसके नियंत्रण में थे (कुहराम, सूनाम) में *मदरसों* की स्थापना में अत्यधिक रुचि ली। एक अन्य मुइज़ी *अमीर* बख्तियार खलजी, जिसे पूर्वी अभियानों की जिम्मेदारी सौंपी गई थी, ने बंगाल में लखनौती में अपने नव स्थापित मुख्यालय और बिहार में मनेर तथा बिहार शरीफ में *खानकाहों* और *मदरसों* का निर्माण कराया। शेख बहाउद्दीन ज़करिया और काज़ी कुतबुद्दीन काशानी द्वारा मुल्तान में संचालित *मदरसों* को इल्तुतमिश ने अत्यधिक उदारतापूर्वक अनुदान प्रदान किया। इब्न बतूता बताता है कि सहवान में भी एक विशाल *मदरसा* था। हांसी और सूनाम के *कस्बे* भी शिक्षा के महत्वपूर्ण केंद्रों के रूप में उभरे। मौलाना ज़ियाउद्दीन सूनामी, जो *फिक्ह* और *तफसीर* का उच्च विद्वान था, अलाउद्दीन

खलजी के शासनकाल में *मुहतसिब* (public censor) के पद पर आसीन था। फिरोज़ शाह तुगलक के शासनकाल में बंगाल में सोनारगाँव इस्लामी शिक्षा के महत्वपूर्ण केंद्र के रूप में उभरा जो यथा समय लखनौती के बाद दूसरी राजधानी बन गया जहाँ सुल्तान क्षेत्र के विभिन्न भागों से प्रसिद्ध *उलमाओं* को आमंत्रित करता था। मौलाना शर्फुद्दीन अबू तवामा, जो *हदीस, फिक्ह* और *इल्म-ए कलम* (दार्शनिक धर्मशास्त्र) का महान् विद्वान था, को दिल्ली से आमंत्रित किया गया। अनेक बल्खी विद्वान भी सोनारगाँव में बस गए। ठीक इसी प्रकार, बहमनी *वज़ीर* महमूद गावां ने बीदर में एक *मदरसे* का निर्माण कराया जो भारत और ईरान में अत्यधिक प्रसिद्ध था जहाँ विशिष्ट शिक्षकों को पढ़ाने के लिए आमंत्रित किया गया था। महमूद गावां ने स्वयं *मदरसे* के पुस्तकालय को 3000 पुस्तकें दान की थीं। मालवा के सुल्तान होशंगशाह (मृ. 1434) ने भी अपनी राजधानी मांडू में एक विशाल *मदरसे* का निर्माण कराया था।

ये *मदरसे* केवल धार्मिक प्रवचन के केंद्र ही नहीं रहे अपितु अलाउद्दीन खलजी के शासनकाल (1296-1316) में तथा बाद के सुल्तानों ने जब तर्कवादी चिन्तकों को संरक्षण प्रदान किया इसने अत्यधिक उदार परिवेश को जन्म दिया। एक तर्कवादी चिन्तक साद मन्तकी उसका परामर्शदाता था। आगे चलकर *मदरसे* न केवल ज्ञान के प्रसार के केंद्र बने अपितु उन्होंने पूरी सल्तनत में नगरों में बौद्धिक संस्कृति को स्पंदित किया तथा सामाजिक गतिशीलता को भी संभव बनाया। आई.एच. सिद्दीकी मानते हैं कि इन नव स्थापित *मदरसों* का अत्यधिक प्रभाव था। वह बल देते हैं कि, '*मदरसों* के माध्यम से शिक्षा दिल्ली और अन्य नगरों में कतिपय मात्रा में सामाजिक तनाव के लिए उत्तरदायी थी' (सिद्दीकी 2012: 104)। वह *कोतवाल* की स्थापना (*कोतवालियान*), *लश्कर* (सेना) और *खल्क* (आम जनता) द्वारा 1301 में हाजी मौला के विद्रोह को किए गए समर्थन को नए शिक्षित वर्ग के उदय के संकेत के रूप में देखते हैं जो 'एक अलग प्रकार का राज्य चाहते थे' (सिद्दीकी 2012: 105)।

12.3.7 *बाजार, मंडियाँ*

खानकाह, सराय और *थाना* समय के साथ महत्वपूर्ण नगरीय केंद्रों के रूप में उभरे और इस प्रकार सल्तनल काल में नगरीकरण की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। धीरे-धीरे उन स्थानों ने समीपवर्ती किसानों और शिल्पकारों को अपनी वस्तुएँ बेचने के लिए आकृष्ट किया। नए निवासियों की नगरीय जीवन शैली भी एक मुख्य कारक थी, जो नगरीय सम्भ्रान्तों की जीवन शैली का अनुकरण करने में आम जनता (अभिजात्य वर्ग जो ऐसा कर सकती थी) को प्रेरित करती थी, बरनी ने ग्रामीण सम्भ्रान्तों, *खोतों, मुकद्दमों* और *चौधरियों* की जीवन शैली पर तिरस्कारपूर्ण टिप्पणी की है कि वे उत्कृष्ट वस्त्र धारण करने, अच्छे नस्ल के कटिबंध (girdled) घोड़ों को रखने तथा उनकी सवारी करते थे, इत्यादि-इत्यादि (सिद्दीकी 2012: 32)।

'इस्लामी नगरों' में बाजारों का स्थान केन्द्रीय था। जब ग़ियासुद्दीन तुगलक (1320-1325) ने अपनी नई राजधानी तुगलकाबाद का निर्माण (1320-21) किया तो इस योजना में *खास बाजार* को केन्द्रीय महत्व दिया गया। इसकी डिजाइन और स्थापत्य का कलात्मक नक्शा खुरासानी शैली पर आधारित था:

> *खास बाजार* स्वयं नगर का मुख्य बाजार प्रतीत होता है जिसके दोनों ओर दुकानें थीं, संभवतः सड़क के आरंभ से अंत तक दुकानें स्थित थीं... सड़क लगभग 20 मीटर चौड़ी है और सड़क के दोनों तरफ लगभग 0.65 मी. ऊँचा चबूतरा है, जिसके ऊपर समान आकार की इकाइयों के रूप में दुकानें एक पंक्ति में बनी थीं... दुकानों और उनके चबूतरों के स्वरूप मध्यपूर्व और भारतीय बाजारों दोनों के लिए परम्परागत थे, जिनमें से अनेक अभी भी प्रचलन में हैं। चबूतरा दुकान के विस्तार के रूप में काम करता है और जब सुबह दुकानें खुलती हैं तो सामने के चबूतरे पर वस्तुएँ नमूने के रूप में प्रदर्शित की जाती हैं... हालांकि केवल *खास बाजार* में ही दुकानों के निचले हिस्से बचे रहे वे भारत में अपनी तरह के दुकानों के सबसे प्राचीन उदाहरण हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि अन्य स्थापत्य संबंधी और नगरीय डिजाइन विशेषताओं के साथ चबूतरे पर स्थापित दुकानों का स्वरूप सुल्तानों के द्वारा खुरासान (अब इसमें अफगानिस्तान, ईरान का वर्तमान खुरासान प्रान्त और तुर्किस्तान का मध्य एशियाई राज्य शामिल है) के क्षेत्र से लाया गया था। भारत मे अनेक नगरों में... सदृश योजना के साथ दुकानें बची हैं... इस प्रकार की दुकानों के प्रारम्भिक उदाहरण बहमनी काल (1347-1538) के आरम्भ से गुलबर्ग के किले में देखी जा सकती हैं।
>
> **[शोकुही, मेहदी और नताली शोकुही, 'दि डार्क गेट, दि डिज़ाइन्स, दि रॉयल इस्केप रूट एंड मोरः सर्वे ऑफ तुगलकाबाद, सेकंड इंतरिम रिपोर्ट', *बुलेटिन ऑफ दि स्कूल ऑफ ओरिएन्टल एंड अफ्रीकन स्टडीज*, खंड 62, सं. 3, 1999: 428-430]**

बाज़ार शब्द का फारसी (*वजार*) और आरमेनियाई (*वकार*) मूल है। तथापि, *खान, बादिस्तान कैसरिया* और *सराय* जैसे अन्य संबंधित शब्द भी हैं जिनका प्रयोग भी किया गया है किंतु उनके भिन्न-भिन्न क्षेत्रीय लक्ष्यार्थ हैं। मिन्हाज दिल्ली में एक अनन्य बाज़ार *बाज़ार-ए बज़ाज़ान* (वस्त्र बाजार) का उल्लेख करता है। बरनी लखनौती के *बाजार-ए बुजुर्ग* (बड़ा बाज़ार) का विस्तारपूर्वक वर्णन करता है जो कि लगभग 2 मील लंबा था और बाद में तुर्कों के आधिपत्य के पश्चात् जब उसमें नए क्षेत्र जुड़ गए तो अब राजधानी गौड़ (पुराना लखनौती) में 24 मील लंबा बाज़ार बन गया। वह लखनौती के पशु बाजार का विस्तृत चित्र प्रस्तुत करता है जहाँ मिन्हाज लिखता है कि प्रतिदिन 1500 तंघन घोड़े बिकते थे। उन्हें पहाड़ी दर्रों के रास्ते से लाया जाता था, वहाँ उनका बड़ी संख्या में कारोबार होता था। सल्तनत काल के दौरान उच्छ, मुल्तान और लाहौर का उदय बड़ी *हाटों* के रूप में हुआ। सिंधु नदी के तटों पर सेहवान के उत्तर में स्थित जनानी में स्पंदमान बाज़ार थे (सिद्दीकी 2012: 40-42)।

सल्तनत काल के दौरान लगभग सभी नवनिर्मित नगरों में *बाजार-ए चहारसु* एक सामान्य विशेषता बन गई। स्थापत्य कला की दृष्टि से *बाजार-ए चहारसु* में 'चार दिशाओं में एक चौराहे के चतुर्दिक खरीदारी से भरपूर सड़कें थीं' (सिद्दीकी 2012: 49)। अमीर खुसरो दिल्ली के *बाजार-ए चहारसु* की भूरी-भूरी प्रशंसा करता है कि 'इसमें इतनी भीड़ होती थी कि लोगों के कंधे (एक दूसरे के साथ) रगड़ाते थे जैसे पगड़ी के झूलते हुए छोर एक दूसरे से सटते थे...' (सिद्दीकी 2012: 49)। सिकन्दर लोदी ने भी अपनी नई राजधानी आगरा (1506) में *बाजार-ए चहारसु* का निर्माण कराया। जौनपुर में आज भी एक चौराहे का नाम *चहारसु* चौराहा है।

12.3.8 *कारखाना*

सल्तनत कालीन नगर परिदृश्य में एक नया तत्व *कारखाना* भी जुड़ा। सुल्तानों और *अमीरों* ने राजधानियों में और *अमीरों* ने प्रान्तों में *कारखानों* की स्थापना की जिन्होंने मुख्य रूप से 'अभिजात्यों' की आवश्यकताओं की पूर्ति की साथ ही साथ यह न सिर्फ बड़ी संख्या में शिल्पकारों के लिए रोजगार का मुख्य केंद्र बन गया अपितु यह प्रशिक्षण केंद्रों के रूप में भी विकसित हुए जहाँ पुराने शिल्पकारों तथा गुलामों को नई तकनीकों तथा शिल्पों, जो तुर्क अपने साथ लेकर आए थे, का भी प्रशिक्षण दिया जाता था। अफीफ बताता है कि फिरोज़ ने छत्तीस *कारखाने* स्थापित किए थे जहाँ उसने अपने गुलामों को प्रशिक्षित किया और रोजगार दियाः 'कुछ को शिल्पकारों के अधीन रखा गया और उन्हें तकनीकी कला सिखाई गई जिससे कि लगभग 12000 गुलाम विभिन्न प्रकार के शिल्पकार (*कासिब*) बन गए' (अफीफ, इलियट III: 341)।

बोध प्रश्न-2

1) 13-14वीं शताब्दियों में नगरीकरण की प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

2) किस प्रकार *खानकाह* नगरीकरण की प्रक्रिया में सहायक हुए?

.....

.....

.....

3) किस प्रकार मुद्रीकरण ने नवीन नगरीय केन्द्रों के उदय में भूमिका निभाई?

.....

.....

.....

12.4 सल्तनत काल में नगरीय उत्पादन

ऐसा प्रतीत होता है कि दिल्ली सल्तनत की स्थापना ने शहरी शिल्प उत्पादन को दोहरा बढ़ावा दिया:

i) सल्तनत कालीन शासक वर्ग शहरों में केन्द्रित था और अपने अपार संसाधन, जो उसे भूमि कर के रूप में प्राप्त होते थे, शहरों में ही खर्च करता था। यह धन वह सेवाओं के भगुतान के रूप में देता था या उत्पादित वस्तुएँ खरीदता था। जो धन सेवाओं के भुगतान के रूप में दिया जाता था उसका भाग अंशतः गुणक प्रभाव (multiplicr effect) के कारण शिल्प उत्पादन के क्षेत्र में जाता था। जबकि शासक और *अमीर* वर्ग की माँग अधिक मूल्य की विलासिता की वस्तुओं की थी; उस पर निर्भर निम्न वर्ग ने कदाचित साधारण आवश्यकता के शिल्प उत्पादन के लिए एक बड़े बाजार को जन्म दिया।

ii) नगरीय उत्पादन को बढ़ाने वाला दूसरा कारण आक्रमणकारियों द्वारा भारत लाई गई तकनीकें थीं (इसके विषय में विस्तृत अध्ययन आपने **इकाई 11** में किया)। विलासिता के क्षेत्र में रेशम के कपड़ों का उत्पादन बढ़ा: ईरान से कालीन बनाने की कला आई। एक अन्य महत्वपूर्ण नगरीय उत्पादन कागज बनाना था। शहरों में रोजगार प्रदान करने वाला सबसे बड़ा क्षेत्र संभवतः भवन निर्माण का था। बरनी के अनुसार, अलाउद्दीन ने अपनी इमारतों के निर्माण के लिए लगभग 70,000 कारीगर रखे थे।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि 1400 में शहरों में प्रति एकड़ भवनों का अनुपात 1200 की तुलना में कहीं अधिक था।

उत्पादन का संगठन

हमारे लिए यह जानना भी महत्वपूर्ण है कि उत्पादन किस प्रकार संगठित किया जाता था? क्या शहरों में कारीगर उत्पादन के लिए **'घरेलू पद्धति'** (**domestic production**) प्रयोग करते थे – अर्थात् उनके पास अपने औजार और कच्चा माल था? क्या उत्पादन पर उनका ही स्वामित्व था और वे स्वयं इसे बाजार में बेचते थे? दूसरे शब्दों में क्या वे स्वयं रोजगार में लग्न थे? अथवा क्या उनके औजार अपने थे और वे अपने घर पर उत्पादन करते थे अथवा उन्हें कच्चा माल व्यापारियों द्वारा दिया जाता था जो उत्पादित वस्तुएँ ले लेते थे अर्थात् ये कारीगर **'दादनी प्रणाली'** (**putting-out-system**) पर कार्य करते थे? समकालीन ग्रंथ इन आयामों के विषय में बहुत कम जानकारी प्रदान करते हैं। फिर भी चूँकि नई तकनीकी के बावजूद अधिकांश औजार लकड़ी या अल्प मात्रा में लोहे के होते थे अतः यह मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि औजार काफी सस्ते थे। इसलिए कारीगर अपने औजारों का स्वयं स्वामी होता था। शायद श्रम के संघठन के भिन्न तरीके प्रचलित थे। कुछ कारीगर घूम-घूमकर कर आवाज लगाते हुए अपनी सेवाएँ बेचते थे। इस श्रेणी में धुनिए को रखा जा सकता है जैसा कि *खैर-उल मजालिस* में विवरण है यह कंधे पर रूई धुनने का यंत्र रखकर घर-घर आवाज लगाता घूमता था और एक निश्चित धनराशि के बदले लोगों की रूई धुनता था। सूत कातने का काम अधिकांशतः महिलाएँ घरों में ही करती थीं। कपड़ा बुनने वाले अपने घरों में करघे पर उस सूत से कपड़ा बनाते थे जो वे स्वयं कातते या बाज़ार से खरीदते थे। वे एक निश्चित मजदूरी लेकर लोगों द्वारा दिए गए सूत से कपड़ा बनाकर भी देते थे। लेकिन अगर कपड़ा बनाने में प्रयोग होने वाला कच्चा माल रेशम, सोने और चाँदी के तार जैसा कीमती होता था तो इसे बनाने के लिए उन्हें किसी की निगरानी में *कारखानों* में जाकर यह कार्य करना होता था। सुल्तान और *अमीरों* के अपनी आवश्यकता और विलासिता की कीमती वस्तुएँ बनाने के लिए स्वयं के अपने *कारखाने* थे। इन *कारखानों* की उपस्थिति के विषय में हमें निश्चित जानकारी मिलती है। डी. डी. कोसाम्बी के अनुमान के विपरीत इन *कारखानों* में इनके स्वामियों के निजी प्रयोग के लिए वस्तुएँ बनाई जाती थीं, बाज़ार के लिए नहीं। शहाबुद्दीन अल-उमरी अपनी पुस्तक *मसालिक-उल अबसार* में लिखता है कि दिल्ली में मुहम्मद तुगलक के *कारखानों* में लगभग चार हज़ार रेशम के कारीगर कशीदाकारी का कार्य करते थे। अफीफ के अनुसार, फिरोज़ तुगलक के *कारखानों* में कपड़े और कालीन बड़ी मात्रा में बनाए जाते थे यद्यपि हमारे स्रोतों में व्यापारियों के *कारखानों* का उल्लेख नहीं मिलता परन्तु हम यह कह सकते हैं कि शायद वे भी बाज़ार के लिए अपने *कारखानों* में कुछ उत्पादन करते हों।

बोध प्रश्न-3

1) तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी में नगरीय उत्पादन में वृद्धि के लिए उत्तरदायी कारकों का विवरण दीजिए।

.....

.....

.....

2) नगरीय केन्द्रों में श्रम के संघठन के विभिन्न रूपों का विवरण कीजिए।

.....

.....

.....

12.5 दास तथा *कारखाने*

दास

दास शाही राजघराने/राज दरबार की एक महत्वपूर्ण विशेषता थे। ये दास अधिकतर या तो युद्ध बंदी थे या *मवास* क्षेत्रों (विद्रोही गाँव जो भू-राजस्व देने से मना कर देते थे) से पकड़े गए विद्रोही होते थे। इसके अतिरिक्त गरीबी, अकाल, अपहरण भी दासों की आपूर्ति में महत्वपूर्ण कारक थे। 1197 के अपने गुजरात अभियान में कुतबुद्दीन ऐबक ने 20,000 दासों को अधिकृत किया। यहाँ तक कि बलबन का रणथभौर पर हमले (1253-1254) और मलिक काफूर के दक्खन अभियानों का भी मुख्य उद्देश्य भारी मात्रा में दासों की प्राप्ति था। बरनी वर्णन करता है कि बलबन ने अपने *दोआब* अभियानों (1267-1268) के दौरान इतने अधिक युद्ध बंदियों को पकड़ा कि दिल्ली के दास बाज़ार (*बाज़ार-ए बरदा*) में दासों की कीमतों में भारी गिरावट आ गई। अलाउद्दीन खलजी के पास 50,000 दास थे, जबकि एक गणना के अनुसार फिरोज़ तुगलक के पास 1,80,000 दास थे। उसके शासन काल के दौरान दासों का एक अलग विभाग (*दीवान-ए बंदगाह*) स्थापित किया गया था। अफीफ वर्णन करता है कि फिरोज़ ने 'सभी *इक्ता* (भू-अनुदान) धारकों और सभी अधिकारियों को आदेश दिया था कि जब वे किसी स्थान पर अभियान पर जाएँ तो वहाँ से गुलामों को एकत्रित करें और उनमें से जो भी दरबार और शाही प्रतिष्ठान के लिए उपयुक्त हो भेजें' (हबीब 2011: 105)। मिन्हाज लिखते हैं कि यहाँ तक कि, अपने मेवातियों के विरुद्ध अभियान के दौरान बलबन ने प्रत्येक विद्रोही को पकड़ने की एवज में दो *तनका* प्रोत्साहन स्वरूप देने की पेशकश की थी।

दासों का इस्तेमाल व्यक्तिगत सेवा के लिए किया जाता था और वे बॉडी-गार्ड के रूप में कार्यरत होते थे। बॉडी-गार्डों की कुल संख्या 40,000 थी। अफीफ यह भी वर्णन करता है कि फिरोज़ के दासों की एक बड़ी संख्या (12,000) विभिन्न कलाओं तथा शिल्पों में प्रशिक्षित शिल्पकारों (*कासिब*) के रूप में कार्यरत थी।

बरनी दिल्ली स्थित एक बड़े विशाल दास बाज़ार का वर्णन करता है। व्यापार मार्ग पर स्थित कंधार भी दास व्यापार के एक बड़े बाज़ार के रूप में उभरा। दास व्यापार में लाभ 300-400 प्रतिशत तक था। अलाउद्दीन खलजी ने दोनों लिंगों के दासों की कीमतें तय की थीं। बरनी अलाउद्दीन खलजी द्वारा विभिन्न श्रेणियों के दासों की कीमतें दर्ज करता है:

दास लड़की, कार्य के लिए	5 से 12 *तनका*
दास लड़की, *सहवासिनी के रूप में*	20 से 30 या 40 *तनका*
दास लड़का, खूबसूरत	20 से 30 *तनका*
पुरुष सेवक, अनुभवी	10 से 15 *तनका*
अप्रशिक्षित दास लड़का, कार्य के लिए	7 से 8 *तनका*

(हबीब 2011: 106)

विडंबना यहाँ है कि यहाँ तक कि एक अनुभवी गुलाम पुरुष का मूल्य एक न्यूनतम गुणवत्ता वाले घोड़े के मूल्य से भी काफी कम था (अलाउद्दीन खलजी के शासन काल में घोड़े की कीमत 10-25 *तनका* के मध्य थी)। इब्न बूतता वर्णन करता है कि बंगाल में एक दुधारू गाय के मुकाबले, जिसकी कीमत 3 चाँदी के *तनके* के बराबर थी, सहवासिनी के रूप में एक दास लड़की की कीमत सोने के एक *तनके* के बराबर थी।

भारतीय बाज़ारों में दासों की भारी उपलब्धता थी। इस्लामिक देशों में भी उनकी काफी माँग थी। लेकिन फिरोज़ तुगलक ने दासों के निर्यात पर प्रतिबंध लगा दिया था। विदेशों से प्राप्त अप्रवासी दास भी थे। फिरोज़ के *वज़ीर* खान जहां मकबूल ने बाइजेंटाइन और चीन से करीब 2000 दास लड़कियाँ अधिगृहीत की थीं। दास व्यापार इतना लाभदायक था कि मिन्हाज सिराज ने भी अपनी बहन की मदद के लिए चालीस दास खुरासान भेजे थे। निज़ामुद्दीन औलिया भी वर्णन करता है कि बिहार के सूफ़ी, दिल्ली से दास, गज़नी में मुनाफे की आशा में खरीद रहे हैं। लेकिन, 16वीं शताब्दी की पहली तिमाही तक आते-आते दास बाज़ारों का कोई उल्लेख नहीं मिलता, हालांकि दास व्यापार सोलहवीं शताब्दी तक अस्तित्व में था। ऐसा प्रतीत होता है कि सोलहवीं शताब्दी तक आते-आते कम से कम उत्पादन प्रक्रिया में कार्यरत दास गायब हो गए थे। बाबर भारत में स्वतंत्र श्रम बाज़ार का वर्णन करता है, लेकिन गुलामों की बात नहीं करता है।

इस्लामी दुनिया के विपरीत, आमतौर पर भारत के बाज़ार साधारण गुलामों की आपूर्ति करते थे, उच्च कीमत वाले दास (1000-2000 *तनका*) दुर्लभ थे, जो घरेलू काम के लिए उनकी उच्च माँग को दर्शाते हैं। कीमतें इतनी सस्ती थीं और आपूर्ति इतनी प्रचुर थी कि गरीब सूफ़ी और *दरवेश* भी उन्हें खरीद सकते थे। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि व्यक्ति-विशेष के आधिपत्य में काफी संख्या में दास रहे होंगे। यहाँ तक कि गरीब से गरीब विद्वान के पास भी सेवारत दास थे। इस प्रकार सल्तनत काल में दास मात्र एक 'वस्तु' थे और 'दास बाज़ार वाणिज्यिक जीवन की एक महत्वपूर्ण विशेषता थी' (हबीब 2011: 106)। यहाँ तक कि दासों की क्षमता और कौशल का उपयोग अपने स्वामी के लिए धन-अर्जन के लिए किया जाता था। रज़िया के शासन काल के दौरान नूर तुर्क अपने जीविकोपार्जन के लिए अपने दास की रुई धुनने से प्राप्त आय पर निर्भर था। इन गुलामों का अपने स्वामी के बदले सैनिक के रूप में सेवा करने के लिए भी उपयोग किया जाता था; एक ऐसी प्रवृत्ति जो बलबन के काल से दिखाई देती है, और इसका नियमितीकरण स्पष्ट रूप से फिरोज़ तुगलक के काल के दौरान स्थापित हो गया था।

अफीफ वर्णन करता है कि मुहम्मद तुगलक के अधीन शाही राजघराने में तैनात दास को राशन और कपड़े के अलावा महीने में दस तनका मिलता था, जो फिरोज़ तुगलक के काल में बढ़कर नकद वेतन के रूप में 25 से 125 *तनके* हो गया था। दासों के साथ अच्छा व्यवहार किया जाता था तथा उनका उचित पालन-पोषण किया जाता था। इस प्रकार सुल्तानों ने उनकी बिना शर्त वफादारी हासिल की।

दास अपनी स्वतंत्रता अपने स्वामियों से 'स्वामियों द्वारा प्रदत्त दासत्व मुक्ति के कृत्यों' के माध्यम से खरीद सकते थे/पा सकते थे। अफीफ वर्णन करता है कि, जब इमाद-उल मुल्क, फिरोज़ का दास-*अमीर* वृद्ध हो गया तो उसने अपने 4000 दासों को दासत्व-मुक्त कर दिया और अपनी आज़ादी की निवेदन सुल्तान से किया। इब्न बतूता के अनुसार मुहम्मद तुगलक ने पुरुष गुलामों (बुधवार) और स्त्री गुलामों (शुक्रवार) की दासत्व-मुक्ति के लिए दिन-विशेष तय कर रखे थे; वहीं शनिवार का दिन पुरुष गुलामों का स्त्री गुलामों के साथ विवाह करने के लिए तय था।

कारखाना

शाही राजघराने की आवश्यकताओं की आपूर्ति *कारखानों* के माध्यम से की जाती थी जो मुख्यतः दो प्रकार के थेः क) उत्पादन-केन्द्र, और ख) भंडार-ग्रह। यहाँ तक कि शाही पुस्तकालय (*किताबीखाना*) भी एक *कारखाना* माना जाता था। फिरोज़ तुगलक के अधीन ऐसे 36 *कारखाने* थे। *कारखाने* दो प्रकार के होते थेः *रातिबी* और *गैर-रातिबी*। अन्नागार, चारा, अस्तबल (*पैगाह*), *बावर्ची-खाना*, *शमाखाना* जैसी नश्वर वस्तुओं से संबंधित *कारखाने रातिबी कारखानों* की श्रेणी में आते थे। इसका एक सुनिश्चित मद होता था। अफीफ वर्णन करता है कि फिरोज़ शाह तुगलक के अधीन इस मद में एक लाख साठ हजार *तनके* आवंटित किए गए थे। *रातिबी कारखानों* में

पैगाह (अस्तबल) सर्वाधिक महत्वपूर्ण था। इसके विभाग कई स्थानों में फैले हुए थे – *सहरवान सुल्तानपुर, किबला, पैगाह महल खास* (शाही अस्तबल), *शकर खान-ए खास*, तथा दासों का *पैगाह*।

नफर खाना ऊँटों का अस्तबल था और इसका सबसे बड़ा केन्द्र *सरकार* दिल्ली में दोबलधान में था। वहीं गैर-*रातिबी कारखाने* वे थे जिनकी अनुदान राशि निश्चित नहीं थी। इस कोटि में कपड़े का *कारखाना* (*जामदार खाना*), शाही निशान (*आलम खाना*), घरेलू साफ-सज्जा, तम्बू, कालीन (फर्राश खाना), शस्त्र और आयुधशाला (*सिलह खाना*), सेना तथा युद्ध संबंधी सामग्री (*जरद खाना*), इत्यादि शामिल थे। अफीफ द्वारा वर्णित इन *कारखानों* पर वार्षिक व्यय फिरोज़ के अधीन इन कारखानों के महत्व और इनकी गतिविधियों के विषय में बहुत कुछ कहता है – *जामदार खाना*: 600,000 *तनका*; *आलम खाना*: 80,000 *तनका*; *फर्राश खाना*: 200,000 *तनका*; वहीं अकेले खाद्य सामग्री के प्रावधान के लिए 160,000 *तनकों* का प्रावधान किया गया था। अफीफ एक *कारखाने* का खर्च मुल्तान शहर के खर्च के बराबर बताता है।

प्रत्येक *कारखाने* की देखरेख का भार एक मलिक या खान की पदवी वाले कुलीन के अधीन होता था तथा एक *मुतसर्रिफ* होता था जो *कारखाने* के लेखा-जोखा का प्रभारी था और तत्काल पर्यवेक्षक के रूप में काम करता था। *कारखानों* के लिए एक अलग *दीवान* या लेखा विभाग होता था। प्रत्येक *कारखाने* में कई *मुहर्रिस* (क्लर्क) नियुक्त होते थे। फिरोज़ के अधीन ख्वाजा अबुल हसन समस्त *कारखानों* का प्रधान प्रभारी था। *कारखाने* का समस्त लेखा-जोखा *दीवान-ए मजमूआ* में रखा जाता था।

हालांकि, यह ध्यान देने योग्य है कि शाही *कारखानों* में उत्पादित वस्तुएँ लाभ की आशा से उत्पादित उत्पाद नहीं थे अर्थात बाज़ार में बिक्री के लिए नहीं थीं, *कारखाने* में उत्पादित वस्तुएँ मुख्यतः शाही राजघराने तथा सैन्य उद्देश्य के प्रयोग के लिए थीं। लेकिन अफीफ के विवरण से संकेत मिलता है कि कुछ मात्रा बिक्री के लिए खुले बाज़ार में भी लाई जाती थी और व्यापारियों के बीच इसकी विशिष्ट माँग थी। यह कहा जाता है कि मुहम्मद तुगलक ने सोने के ब्रोकेड के काम में पाँच सौ श्रमिकों को और चार हजार रेशम बुनकरों को दरबार में कृपापात्रों को उपहार स्वरूप देने के लिए *खिल्लत* (सम्मान वस्त्र) तैयार करने के लिए नियोजित किया था। अफीफ वर्णन करता है कि फिरोज़ तुगलक के *कारखानों* में बड़ी मात्रा में कपड़े और कालीन उत्पादित किए जाते थे।

बोध प्रश्न-4

1) सही कथन के आगे (✓) और गलत के आगे (×) का चिह्न लगाइएः

   क) गुलाम केवल सुल्तान और उसके *अमीरों* द्वारा रखे जाते थे। ( )

   ख) फिरोज़ तुगलक के अधीन बड़ी संख्या में दास शिल्पकर्मी थे। ( )

   ग) अलाउद्दीन खलजी ने भारत से दासों के निर्यात पर रोक लगाई। ( )

2) दिल्ली सल्तनत में दासों की आपूर्ति के मुख्य स्रोत क्या थे?

.....

.....

.....

3) दिल्ली सुल्तानों के अधीन दास बाज़ार की कार्यप्रणाली की विवेचना कीजिए।

.....

.....

.....

4) अलाउद्दीन खलजी के काल में व्याप्त दासों के मूल्यों का विश्लेषण कीजिए।

.....

.....

.....

5) फिरोज़ शाह तुगलक के अधीन विभिन्न प्रकार के *कारखानों* की उपस्थिति का परीक्षण कीजिए।

.....

.....

.....

12.6 सारांश

इस इकाई में आपने पढ़ा कि तुर्कों के आने के बाद मुद्रीकरण और उद्योग तथा व्यापार बढ़ा। हम देखते हैं कि 1200 के बाद सिक्कों के अधिक भंडार मिलते हैं। इस काल में बहुत से नगरों का उदय हुआ। आपने यह भी पढ़ा कि शहरों में किस प्रकार शिल्प उत्पादन संगठित किया जाता था। यह इकाई उत्पादन प्रक्रिया में दास तथा दासत्व की भूमिका तथा शाही *कारखानों* में उत्पादन का संगठन किस प्रकार किया जाता था की चर्चा पर समाप्त होती है।

12.7 शब्दावली

घरेलू उत्पादन पद्धति **(Domestic production)**	उत्पादन की वह प्रक्रिया जिसमें कारीगर अपने औजारों और कच्चे माल की सहायता से अपने घरों में उत्पादन करते थे
दादनी **(Putting-out system)**	उत्पादन का वह तरीका जिसमें कारीगर के औजार तो अपने होते थे परन्तु वस्तुएँ बनाने के लिए उन्हें कच्चा माल अथवा धन व्यापारियों द्वारा प्राप्त होते थे

12.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1) देखें भाग 12.2

2) a) ✓ b) × c) ✓

बोध प्रश्न-2

1) देखें उप-भाग 12.3

2) देखें उप-भाग 12.3.2

3) देखें उप-भाग 12.3.4

बोध प्रश्न-3

1) देखें भाग 12.4

2) देखें भाग 12.4

बोध प्रश्न-4

1) a) × b) ✓ c) ×

2) देखें भाग 12.5

3) देखें भाग 12.5

4) देखें भाग 12.5

12.9 संदर्भ ग्रंथ

बंगा, इंदू, (2005) *द सिटी इन इंडियन हिस्ट्री* (नई दिल्लीः मनोहर).

हबीब, इरफान, (2011), *इकॉनॉमिक हिस्ट्री ऑफ मिडिवल इंडिया, 1200-1500, सीरीज़ हिस्ट्री ऑफ साइंस, फिलासफी एंड कल्चर,* संपा. डी.पी. चट्टोपाध्याय (दिल्लीः लांगमैन/पियरसन).

रेचौधरी, तपन और इरफान हबीब, (1982) *द कैम्ब्रिज इकॉनामिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया,* भाग 1 (दिल्लीः कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस).

सिद्दीकी, इक्तदार हुसैन, (2019) *दिल्ली सल्तनतः अर्बेनाइज़ेशन एंड सोशल चेंज* (नई दिल्लीः वीवा बुक्स).

12.10 शैक्षणिक वीडियो

अर्बन इकॉनॉमी एंड टेक्नालॉजी ड्यूरिंग द दिल्ली सल्तनत
https://www.youtube.com/watch?v=YDgmSS54u-c

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 13 आंतरिक और समुद्री व्यापार*

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 दिल्ली सल्तनत के अधीन आंतरिक व्यापार

13.2.1 आंतरिक और स्थल कारवाँ मार्ग

13.2.2 व्यापारी, व्यापार की वस्तुएँ तथा बाज़ार

13.2.3 व्यापार तथा वाणिज्य और राज्य

13.3 गुजरातः एक अध्ययन

13.4 समुद्री व्यापार का नेटवर्क

13.5 दिल्ली सल्तनत के अधीन व्यापार

13.6 महत्वपूर्ण व्यापारिक केंद्र

13.7 ऋण, बैंकिग और व्यापार

13.8 व्यापारी और व्यापारिक समुदाय

13.9 सारांश

13.10 शब्दावली

13.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

13.12 संदर्भ ग्रंथ

13.13 शैक्षणिक वीडियो

13.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम दिल्ली सल्तनत के अधीन आंतरिक और समुद्री व्यापार के स्वरूप का अध्ययन करेंगे। दिल्ली सल्तनत के काल में इस व्यापारिक गठबंधन में विविध महत्वपूर्ण गतिविधियाँ देखने को मिलती हैं। इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आपः

- दिल्ली सल्तनत के अधीन आंतरिक और समुद्री व्यापार के स्वरूप को समझ सकेंगे,
- इन व्यापारिक गतिविधियों में संलग्न प्रमुख व्यापारिक समुदायों के बारे में जान सकेंगे,
- बाज़ार और तटीय क्षेत्रों में प्रचलित व्यापारिक प्रथाओं की चर्चा कर सकेंगे,
- व्यापार तथा वाणिज्य के राज्य के साथ संबंध का मूल्यांकन कर सकेंगे,
- आयात व निर्यात की मुख्य वस्तुओं की सूची बना सकेंगे,
- व्यापारी समुदायों पर लगाए गए विभिन्न करों का विश्लेषण कर सकेंगे, और
- महत्वपूर्ण स्थल और तटीय मार्गों की सूची बना सकेंगे।

13.1 प्रस्तावना

प्राचीन और मध्यकालीन भारतीय साम्राज्य के लिए भू-राजस्व आय का प्रमुख स्रोत था। यह तथ्य दिल्ली सल्तनत काल के संदर्भ में भी सत्य था (ज्यादा जानकारी के लिए इस पाठ्यक्रम की **इकाई**

* डॉ. दिव्या सेठी, सेंटर फार हिस्टॉरिकल स्टडीज, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली; और डॉ. सोहिनी बासक, सेंटर फार हिस्टॉरिकल स्टडीज, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

9 देखिए)। भू-राजस्व के बाद, व्यापार और वाणिज्य दूसरा प्रमुख स्रोत्र था, जिससे सल्तनत एक बड़ी आय प्राप्त करती थी। भू-राजस्व से संबंधित स्रोत पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं, जबकि व्यापार और वाणिज्य से संबंधित स्रोत व्यापक नहीं हैं और उन पर बहुत प्रकाश नहीं डाला गया है। दक्षिण-पूर्व एशिया के रूपांतर (variant) से भिन्न (पलात और वॉल्रस्टाइन 1999: 26) जहाँ अभ्यंतर (interior) काफी हद तक तटीय विनिमय संबंधों के मुद्रीकरण और परिष्करण से अछूता रहा, भारत के अभ्यंतर निवासियों ने आर्थिक और राजनीतिक संबंधों के मध्य उत्पन्न होने वाले परिणामों को महसूस किया। शासक वर्ग में मात्र कुछ व्यक्तियों के हाथों में अधिशेष के अवशोषण के कारण मौजूदा नगरीकरण और बाज़ार पदानुक्रम के पैटर्न में काफी बदलाव आया (जैसा कि आपने इस पाठ्यक्रम की **इकाई 12** में पढ़ा)।

आवधिक बाज़ारों के साथ जहाँ कृषकों और शिल्पकारों को लेन-देन का संचालन करते देखा जा सकता था, स्थानीय स्तर पर संबंधों के आदान-प्रदान का एक सघन नेटवर्क था। स्थल व्यापार की तीन प्रमुख वस्तुएँ थीः घोड़े, हाथी और दास। वे प्रमुखतः शाही वर्ग के उपयोग के लिए थे। इस शाही वर्ग की माँग अधिक से अधिक नकदी में राजस्व एकत्र करने की थी। इस घटनाक्रम ने समाज के कुछ वर्गों को लाभ पहुँचाया जैसे समृद्ध कृषक, शिल्पकार और व्यापारिक समुदाय। इस अवधि के श्रेष्ठ व्यापारिक समुदाय थेः ***कारवानी, बक्काल, ज़रगरान, मुल्तानी*** और ***सर्राफ***, इत्यादि। मुद्रीकरण के विस्तार ने विनिमय नेटवर्क को और सुगम बनाया। बढ़ते कृषि और शिल्प उत्पादन के बावजूद बड़े पैमाने पर खपत में कोई तुलनात्मक वृद्धि नहीं हुई। उपमहाद्वीप में इस घटनाक्रम को समझने के लिए समुद्री व्यापार के नेटवर्क (विशेष रूप से अंतःएशियन) का विश्लेषण करने की आवश्यकता है।

भारतीय समुद्री व्यापार का दो भागों में अध्ययन किया जा सकता हैः तटीय व्यापार और समुद्री व्यापार। तटीय व्यापार हिन्द महासागर के दो समुद्री क्षेत्रों से संचालित किया जाता था। ये भारत के पश्चिमी और पूर्वी तट थे। पश्चिमी तट सिंध से मालाबार तक फैला हुआ था और फारस की खाड़ी, लाल सागर और पूर्व अफ्रीका के बन्दरगाहों से जुड़ा हुआ था। पूर्वी तट बंगाल से कोरोमंडल तक फैला हुआ था लेकिन मालाबार बन्दरगाहों सहित दक्षिणी-उत्तरपूर्व एशिया और चीन से जुड़ा हुआ था (हैदर 2011: 164)। भारत में चौदहवीं और पंद्रहवीं शताब्दी में निर्यात की जाने वाली तीन मुख्य वस्तुएँ, मसाले, कपड़ा और नील थीं। इस व्यापारिक तंत्र में संलग्न गुजरात के **बोहरा** जैसे भारत के उद्यमी व्यापारिक समुदायों के अतिरिक्त विदेशी व्यापारी भारत के विभिन्न तटीय क्षेत्रों में बसे हुए थे, जैसे काहिरा के अरब व्यापारी गुजरात में बसे हुए थे। इब्न बतूता ने भी चीनी व्यापारियों का बड़ा समुदाय मालाबार में बसा हुआ पाया था।

उत्तर मध्ययुगीन और आरंभिक आधुनिक काल को भारतीय इतिहास में मुख्य रूप से यूरोपीय व्यापारिक कंपनियों के भारत आगमन के साथ-साथ हिन्द महासागर में निजी व्यापरियों के आने से चिह्नित किया जाता है। इस अवधि में भारतीय समुद्री व्यापार के अन्य निर्धारक लक्षण हैंः व्यापक कीमती धातु की अधिकता, भारतीय कपड़े का व्यापार और समुद्री व्यापार और राज्य के बीच संबंध (प्रकाश 2011: 1)। इस क्षेत्र को अपनी विशिष्ट व्यापारिक व्यवस्था के कारण जाना जाता था जो न केवल आर्थिक सीमा तक ही सीमित थी बल्कि इसने यहां फल-फूल रहे लोगों की सामाजिक और सांस्कृतिक प्रकृति पर भी प्रभाव डाला। इस इकाई में हम दिल्ली सल्तनत के दौरान स्थल मार्ग और हिन्द महासागर क्षेत्र में किए जा रहे व्यापार की प्रकृति पर ही चर्चा करेंगे। इसमें सम्मिलित किया जाएगाः व्यापार की महत्वपूर्ण वस्तुओं; इस व्यापार का स्थापित व्यापारिक तंत्र, और कुछ जो विकसित हो रहे थे, द्वारा संचालन करना; व्यापारिक समुदाय की इस व्यापारिक तंत्र में भागीदारी; यूरोपीय और निजी व्यापरिक कंपनियों का हिन्द महासागर में आगमन; और राज्य और इस व्यापार में संलग्न समुदायों के मध्य संबंध। यह अध्ययन हमें हमारे अध्ययन काल में आंतरिक और समुद्री व्यापार की विस्तृत प्रकृति को समझने में सहायता करेगा।

13.2 दिल्ली सल्तनत के अधीन आंतरिक व्यापार

ग़ज़नवी आक्रमण के प्रारंभिक प्रभाव के कारण भारतीय व्यापार को करारा झटका लगा था। 1030 में मसूद द्वारा सिंहासन पर कब्जे के बाद वह युग, जब लूट राजस्व का प्रमुख स्रोत्र था, समाप्त हुआ

और स्थानीय स्वायत्त सरदारों से कर का संग्रह राजकोष के लिए मुख्य संसाधन बन गया। यह केवल बाद के चरण में ही था कि उचित राजकोषीय व्यवस्था, जैसे कि *खराज* (भूमि कर) ने आकार लेना प्रारम्भ किया। हालांकि शुरुआती सुल्तानों की नौकरशाही और सैनिकों को राजस्व अनुदानों (*इक्ता*) के रूप में भुगतान किया गया, कराधान में नकदी के माध्यम से भुगतान के पुख्ता सबूत अलाउद्दीन खलजी के शासनकाल से ही प्राप्त होते हैं (हैदर 1998: 237)।

लेकिन एक निश्चित आर्थिक स्थिरता ग़ज़नवी साम्राज्य को उत्तर-पश्चिमी भारत में विरासत के रूप में मिला थी। इस स्थिरता का एक संकेतक प्रचलित क्षेत्रीय सिक्के थे। उनकी टकसाल नीति सिक्कों को ढालने के विभिन्न तरीकों के संदर्भ में व्यापारिक समुदाय द्वारा प्रभावित थी। दूसरा संकेतक ग़ज़नवी कालीन लाहौर की सांस्कृतिक प्रफुल्लता थी। मुस्लिम कवियों और सूफ़ी ग्रंथों को दरबार द्वारा उदार संरक्षण प्राप्त था, जो 11वीं शताब्दी के अंत में एक पर्याप्त मुस्लिम आबादी की विद्यमानता को दर्शाता है।

15वीं शताब्दी के अंत में परिदृश्य पूरी तरह से बदल गया था। जब बंगाल और गुजरात जैसे तटीय प्रांतों ने राजधानी को राजस्व का भुगतान करना बंद कर दिया था और लोदी सुल्तान दक्षिण में प्रवेश करने में सक्षम नहीं हुए थे (रिचर्ड्स 1965)। विद्वानों में इस बात को लेकर बहस है कि राजनीतिक परिस्थितियों में अस्थिरता के कारण तटों से परिक्षेत्र (hinterland) की ओर जाने वाले व्यापारिक मार्गों में बाधा आई और सड़कों पर असुरक्षा ने व्यापार को हतोत्साहित किया था। दूसरी ओर यह तर्क दिया जाता है कि, उपमहाद्वीप के विभिन्न क्षेत्रों के मध्य सामान्य व्यापारिक संबंध निरंतर बने रहे और लोदी सुल्तान राजस्व प्राप्त करने के लिए व्यापार पर निर्भर नहीं थे। बल्कि लोदी सुल्तानों ने राजधानी में अपनी राजनैतिक सफलता के माध्यम से अपरिमित मात्रा में खज़ाना एकत्र किया था। हालांकि, यह अनुमान लगाया जा सकता है कि, सबसे खराब स्थिति में भी, व्यापार प्रभावित हुआ था लेकिन पूरी तरह से बाधित नहीं हुआ। बिना इस बहस में पड़े हम यहां दिल्ली सल्तनत के अधीन प्रचलित आंतरिक और स्थल व्यापारिक मार्गों पर ध्यान केंद्रित करेंगे।

13.2.1 आंतरिक और स्थल कारवाँ मार्ग

आंतरिक व्यापारिक मार्ग

मध्यकालीन *कारवाँ* व्यापारिक मार्गों का नेटवर्क विशेष नोडल बिंदुओं, जैसे कोरोमंडल और बंगाल के तटों पर पुलिकट और हुगली, और शाही राजधानियों जैसे दिल्ली और विजयनगर को जोड़ता था (पलात और वॉलरस्टाइन, 1999: 35)। दिल्ली सल्तनत के युग में कस्बों में माल की आवश्यकता मुख्यतः आंतरिक व्यापार का आधार बनी। अर्थव्यवस्था के बढ़ते मुद्रीकरण ने माल और सेवाओं की उपलब्धता को और भी संभव बनाया, क्योंकि इन सामानों को खरीदने के लिए शहरी आबादी के पास पैसा होता था। आंतरिक व्यापार दो स्तरों पर विकसित हुआः (क) कम दूरी पर गाँव-शहर के मध्य वस्तुओं में व्यापार; और (ख) लंबी दूरी पर उच्च मूल्य के सामानों में अंतर-शहरीय व्यापार। दिल्ली में मुख्यतः अनाज की आपूर्ति *दोआब* और पश्चिमी राजस्थान, और ट्रांस-गंगा क्षेत्र में अमरोहा से प्राप्त की जाती थी। अच्छी गुणवत्ता का चावल हरियाणा के सिरसा से खरीदा जाता था। गेहूँ, चावल और चीनी कड़ा और मानिकपुर से आयात किए जाते थे, जो गंगा पार के क्षेत्र में स्थित थे। चीनी कन्नौज से खरीदी जाती थी (हबीब 2011: 127)। आसवित शराब राजधानी में अलीगढ़ और मेरठ से आती थी। दिल्ली का बाज़ार मालवा में धार जैसे दूर-दराज के क्षेत्रों से जुड़ा हुआ था। विभिन्न प्रकार का कपड़ा राजधानी में, गोला (आधुनिक समय का रोहिलखंड), नागौर, देवगिरी और अवध (अयोध्या) जैसे क्षेत्रों से आता था। प्रत्येक शहर का विभिन्न वस्तुओं के लिए अपना स्वयं का एक व्यापारिक क्षेत्र होता था, जो प्रायः परस्पर-व्याप्त था। उदाहरण के लिए, मुल्तान शहर लाहौर और दिल्ली से चीनी की आपूर्ति प्राप्त करता था और घी की आपूर्ति सिरसा से प्राप्त करता था।

चूँकि परिवहन की लागत अनुकूल थी और दुर्गम क्षेत्रों में उनके माध्यम से प्रवेश किया जा सकता था, इसलिए *कारवाँ* मार्गों ने अपना महत्व बनाए रखा जबकि अंतर-समुद्री व्यापार का विस्तार हो रहा था। एक दूसरे के साथ प्रतिस्पर्धा करने के बजाय, *कारवाँ* मार्ग जल-परिवहन के पूरक थे। इन्होंने शहरी बाज़ारों को और प्रांतीय राजनैतिक केंद्रों को तटीय क्षेत्रों और विस्तृत व्यापारिक नेटवर्क के साथ जोड़ा। विनिमय के ये लंबी दूरी के नेटवर्क और तीव्र हुए और यह सुनिश्चित किया कि संकीर्ण फेरीवाला व्यापार को ऐसे नेटवर्क से समाप्त नहीं किया जा सकता था। कुछ धनी

व्यापारियों के अतिरिक्त बाज़ार के पदानुक्रम में विनिमय के इन परिपथों में व्यापारियों की अपनी भूमिकाएँ थीं। इस तरह की भागीदारी इस तथ्य को भी दर्शाती है कि छोटे व्यापारियों के पास विजयनगर के *वराह* सहित विभिन्न सिक्कों के लेन-देन के लिए ज्ञान और अनुभव था। उनका स्थानीय प्रथागत आवश्यकताओं और जरूरतों का अपनी जाति और रिश्तेदारी के एक ग्रिड के माध्यम से स्थापित अपना ज्ञान भंडार था। विनिमय नेटवर्क की यह गहनता और बढ़ती क्षेत्रीय अंतर्निर्भरता, एकीकृत उत्पादन प्रक्रियाओं की शुरुआत और उनका गहरा समन्वय, और श्रम के क्षेत्र-विशिष्ट विभाजन को दर्शाता है।

स्थल *कारवाँ* व्यापारिक मार्ग

घुमावदार *कारवाँ* मार्गों ने भारत को प्राचीन समय से मध्य एशिया के साथ जोड़ा है। स्थल मार्ग ने उत्तर भारत को अफगानिस्तान, तुर्किस्तान, खुरासान, पश्चिमी ईरान, इराक और लेवांत से जोड़ा (हैदर 2011: 163)। इन व्यापारिक मार्गों का स्वरूप इतिहास के अलग-अलग समय-कालों में भिन्न रहा है। 14वीं शताब्दी के अंत तक आते-आते इस्लामिक पश्चिम और भूमध्यसागरीय बाज़ारों – मिश्र और सीरिया के लिनन उद्योगों – के वस्त्रों के प्राथमिक निर्यात में गिरावट के साथ दक्षिण एशिया में शिल्प उत्पादन में वृद्धि हुई (पलात और वॉलरस्टाइन, 1999: 32)। इसके परिणामस्वरूप हुए पूर्वी हिंद महासागर के वस्तु उत्पादन और विनिमय नेटवर्क के पुनरुद्धार के बारे में इस इकाई में बाद में चर्चा की जाएगी। मलय प्रायद्वीप बंदरगाहों की एक श्रृंखला का विकास विभिन्न नेटवर्कों की विद्यमानता को प्रतिबिंबित करता है, जो हिंद महासागर की तटरेखा और उनसे संबंधित आंतरिक इलाकों को जोड़ता था। अंतर्वाहित बुलियन और सरल रूप मुद्रा को इन *कारवाँ* मार्गो द्वारा पंजाब से वस्त्रों और गंगा-सिंधु मैदान के अन्य उत्पादों के बदले में मध्य एशिया मार्ग के माध्यम से लाया जाता था।

मध्यकालीन *कारवाँ* व्यापारिक लेन-देन अंतरराष्ट्रीय व्यापार में आने वाली विविधताओं और यूरोप से पूर्व की ओर बुलियन प्रवाह के पैटर्न में बदलाव से प्रभावित होता था। उपमहाद्वीप में कीमती धातुओं की आपूर्ति को प्रभावित करने वालों में से एक व्यापारिक केंद्र कुस था, जो लेवांत व्यापार के मार्ग में स्थित था। वार्षिक दमिश्क तीर्थ *कारवाँ* स्थल मार्ग के माध्यम से मक्का और अदन पहुँचता था, जो समुद्री मार्ग के समानांतर चलता था। आर्मेनियन और इटालियन व्यापारी ट्रेबीज़ोंड और तबरीज़ (ईरान में) के मध्य *कारवाँ* राजमार्ग के साथ फारस की खाड़ी के माध्यम से मंगोलों के संरक्षण में व्यापार करते थे। भारतीय व्यापारी अन्य क्षेत्रों के प्रतिस्पर्धी व्यापारियों के साथ इस मार्ग पर काफी सक्रिय थे। इन मार्गों पर व्यापार की वस्तुओं में मसाले, घोड़ों, नील, इत्र के बदले वस्त्रों, सोना और चाँदी, तथा अन्य विलासिता की वस्तुओं का व्यापार शामिल था। इसका सीधा प्रभाव दिल्ली सल्तनत के अधीन कीमती धातु के सिक्कों के उत्पादन पर पड़ता था।

इनमें से कुछ कीमती धातुएँ जो समुद्री मार्गों के माध्यम से उपमहाद्वीप में पहुँचती थीं बंगाल जैसे नज़राना देने वाले क्षेत्रों से प्राप्त की जाती थीं। 15वीं शताब्दी के अंत में बर्सा (तुर्की शहर) गंतव्य के लिए भेजे गए बुलियन के साथ नील और सूती वस्त्रों की आपूर्ति के संबंध में साक्ष्य मौजूद हैं, जो दक्षिण भारत और दक्खन पहुँचे जिन्हें अलाउद्दीन खलजी और मुहम्मद तुगलक द्वारा बाद में की गई छापेमारी में बरामद किया गया (हैदर 1998: 240)। यह इस तथ्य को दर्शाता है कि मध्ययुगीन नकदी अर्थव्यवस्था और कारवाँ व्यापार का तत्कालीन अंतर्राष्ट्रीय नेटवर्क के विनिमय में प्रमुख स्थान था और इस प्रकार, वह उसमें होने वाली गतिविधियों से भी प्रभावित था। *कारवाँ* व्यापार, जिसने महाद्वीपों के आर-पार माल की आवाजाही में मदद की, के साथ-साथ अंतर्देशीय जल-मार्ग के माध्यम से पर्याप्त मात्रा में सामान ले जाया जाता था, जो वाणिज्यिक परिवहन के मुख्य माध्यमों में से एक था। हालांकि अंतर्देशीय जलमार्ग काफी हद तक मौसमी थे।

घरेलू व्यापार को गाँवों, *मंडियों* और जिले के शहरों के मध्य होने वाले स्थानीय व्यापार में विभाजित किया जा सकता है। स्थानीय व्यापार में भू-राजस्व के भुगतान के लिए फसलों की बिक्री शामिल थी, जिससे शहरी केंद्रों की आपूर्ति होती थी। फसलों की बिक्री मुख्य रूप से गाँव के बनियों की जिम्मेदारी थी, जो किसानों को नमक और मसालों जैसी आवश्यकताओं और गाँव के लोहार के उपयोग के लिए कच्चा लोहा भी प्रदान किया करते थे। अलाउद्दीन खलजी ने ग्रामीण स्तर पर जमाखोरी को रोकने के लिए विनिमय करने की कोशिश की। स्थानीय मेले *मंडियों* के पूरक थे। मुल्तान से निर्यात किया जाने वाला अधिकांश सामान या तो दिल्ली से प्राप्त होता था या वहाँ से पुनः निर्यातित माल होता था।

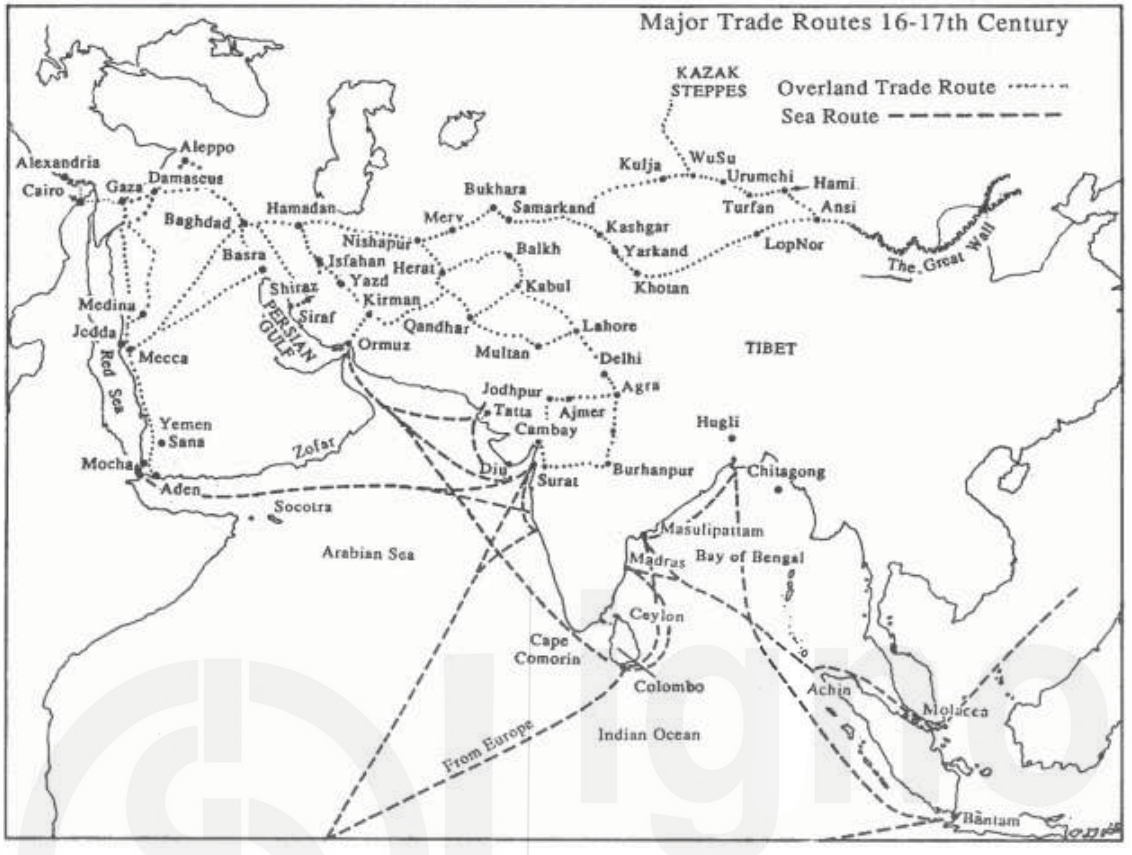

मानचित्र 13.1: 16वीं-17वीं शताब्दी के दौरान प्रमुख समुद्री मार्ग

स्रोत: ई.एच.आई.-04: *भारत 16वीं सदी से 18वीं सदी के मध्य तक,* खंड 6, इकाई 21, पृ. 26

13.2.2 व्यापारी, व्यापार की वस्तुएँ तथा बाज़ार

दिल्ली सल्तनत के अधीन व्यापारिक समुदाय अपनी विशिष्ट भूमिकाओं के साथ विभिन्न समूहों का सम्मिश्रण था। जैसा कि बरनी ने अपनी *तारीख-ए फिरोज़शाही* में उल्लिखित किया है, *सौदागरान, तुज्जार* और *बाजुर्गनान* के अतिरिक्त, विशेष व्यापारियों में शामिल थे: i) *कारवानियान* (*कारवानी* अनाज-व्यापारी थे जो दो प्रकार के थे: *सौदागरान-ए कारवानी*, परिवहन व्यापारी और *सौदागरान-ए बाज़ारी, बाज़ार के व्यापारी*) (ii) *बक्कालान* (शब्द *बक्काल* अक्सर भारत में मुस्लिम लेखकों द्वारा बनिया समुदाय के सदस्यों को इंगित करने के लिए प्रयुक्त किया जाता था); iii) *ज़रगरान* (संभवतः मध्य एशिया में ज़रगरान क्षेत्र से संबंधित लोग); iv) *साहान* (शब्द साह धनी व्यापारियों या वाणिज्यिक वर्ग के सम्माननीय पुरुषों का द्योतक था); v) ***मुहताकिरान*** (इसका शाब्दिक अर्थ है जमाखोर); vi) *बाज़ारियान* (बाज़ार के दुकानदार या खुदरा विक्रेता)।

इन विशेष व्यापारियों के अतिरिक्त, अन्य व्यापारी समुदाय थे जैसे कि *मुल्तानियान* (बड़े व्यापारी जिन्होंने खुद को साहूकारी (पैसे उधार देने) के कारोबार में स्थापित किया था), *दल्लालान* (बाज़ार में दलाल जो व्यापार में विशेषज्ञ ज्ञान रखते थे जैसे घोड़ा-व्यापार, मवेशी-व्यापार, इत्यादि), *किसहदारान* (संभवतः वे घोड़ा-व्यापार में संलग्न साहूकार थे), *मिहतरान* (प्रतिष्ठित व्यापारी), और *सर्राफान* (सुनार जो मुख्य रूप से मुद्रा परिवर्तक थे और साहूकारी के कारोबार में भी रत थे)।

मुल्तान स्थल व्यापार का प्रमुख व्यापारिक केंद्र था। मुल्तान-क्वेटा मार्ग के माध्यम से भारत मध्य एशिया, अफगानिस्तान और ईरान से जुड़ा हुआ था। मुल्तान की समृद्धि जो दिल्ली सल्तनत के अधीन अपने वाणिज्यिक परिवेश के लिए विख्यात थी, इसे 11वीं शताब्दी से अनुरेखित किया जा सकता है। मुल्तानी व्यापारी समुदाय को भी 11वीं शताब्दी से अनुरेखित किया जा सकता है, जब मन्सूरा, अरोर और लाहौर जैसे शहर व्यावसायिक रूप से गज़नवी साम्राज्य के अधीन जीवंत थे।

मुल्तानी व्यापारी, जो हिंदू थे और फारसी बोलते थे, व्यापार के लिए मुस्लिम शासन के अधीन क्षेत्रों में सांस्कृतिक रूप से उपयुक्त थे। वर्ष 1206 तक, महमूद ग़ज़नवी सिंधु के अधिकांश मैदानी इलाकों को ग़ज़नवी नियंत्रण में ले आया था।

सौदागरान-ए बाज़ारी के साथ-साथ *कारवानी* व्यापार की सबसे महत्वपूर्ण वस्तु अर्थात, अनाज में लेन-देन करते थे। बरनी अनाज व्यापार पर उनके एकाधिकार और लाभ कमाने के उनके व्यवहार का आलोचक था। संकट के समय, जैसे कि 1299 और 1303 के दो मंगोल आक्रमणों या सुल्तान फिरोज़ शाह द्वारा सिंध की घेराबंदी या 1309 का अकाल में इन व्यापारियों ने स्थिति का अनुचित लाभ उठाया और आवश्यक वस्तुओं की कीमतें कई गुना बढ़ीं। यह काफी हद तक उनके लाभ कमाने के स्वभाव के कारण हुआ। बरनी *फतवा-ए-जहांदारी* में उल्लिखित करता है:

> ...लेकिन बहुतायत उत्पादन की अवधि के दौरान, जब बारिश आशीर्वाद के रूप में आती है, और फसल, फल, जुते हुए खेत और बहुतायत में बढ़ते शानदार बगीचे भी परिवहन-व्यापारी ... और बाज़ार-व्यापारी..., फिर भी ऊँचे दामों पर बेचने के तरीके को अपनाते हैं, और इन उच्च कीमतों (*इहतिकार*) के परिणामस्वरूप होने वाले विशाल लाभ के कारण, यह राजाओं का प्राथमिक कर्तव्य है कि चाहे जो कुछ भी करें कीमतों को नियंत्रित करने का प्रयास करें और उनमें कमी लाने के लिए कड़ी मेहनत करें।
>
> **(सिद्दीकी 1975: 6)**

कृत्रिम रूप से वस्तुओं की तंगी कई कारकों के कारण संभव हो पाई थी जैसे सड़कों की असुरक्षा, मौसम की स्थिति और उसमें शामिल पारगमन लागत। अलाउद्दीन खलजी के शासनकाल में राज्य द्वारा उपभोग की आवश्यक वस्तुओं में एकाधिकार व्यापार को समाप्त करने के प्रयास किए गए थे। इन उपायों के अनुसार, *कारवानियों* को यमुना के किनारे घर बसाने के लिए मजबूर होना पड़ा और राज्य के अधिकारियों की देख-रेख में एक निश्चित मूल्य पर काश्तकारों से अधिशेष अनाज प्राप्त करना पड़ा। अन्य सभी वस्तुओं की कीमतें भी शासक द्वारा सुनिश्चित कर दी गई थीं। अलाउद्दीन खलजी ने इसके अतिरिक्त एक अधिकारी *शाहना-ए मंडी*, बाज़ार-नियंत्रक, को नियुक्त किया था जो बाज़ार की सभी गतिविधियों का निरीक्षण करता था और यह सुनिश्चित करता था कि राज्य द्वारा स्थापित कानूनों का पालन किया जाए। इन उपायों को सख्ती से लागू किया गया था, जैसा कि समकालीन स्रोतों से स्पष्ट होता है। उन व्यापारियों पर भारी जुर्माना लगाया जाता था जो राज्य द्वारा लागू किए गए आदेशों का पालन नहीं करते थे।

अलाउद्दीन के शासनकाल में कपड़ा बाज़ार में सौदा करने वाले व्यापारियों के संबंध में इसी तरह की सख्त प्रथाएँ लागू की गईं थीं। वे राज्य भण्डार को छोड़कर, माल का भंडारण कहीं और नहीं कर सकते थे। वे माल को राज्य द्वारा निर्धारित कीमतों पर ही बेचा करते थे। *मुल्तानियों* को देश के विभिन्न हिस्सों से खरीदे गए कपड़े को राजधानी में लाने के लिए ऋण दिया जाता था, और इसे कम कीमत पर बेचा जाता था ताकि यह कुलीनों को आसानी से उपलब्ध हो सके। अन्य उपायों के अतिरिक्त, शासक द्वारा प्रत्येक प्रकार की वस्तुओं पर कई नियम लागू किए गए थे। सुल्तान ने व्यक्तिगत रूप से बाज़ार में उन नियमों के कार्यान्वयन का पर्यवेक्षण किया। इन नियमों के कारण विभिन्न व्यापारियों द्वारा स्थापित एकाधिकार को दूर किया जा सका। लेकिन शासक के निधन के बाद व्यापारी फिर से पूर्व प्रवृत्तियों में व्यस्त हो गए। कुतबुद्दीन मुबारक खलजी के शासनकाल में वस्तुओं की कीमतें बरनी द्वारा उल्लिखित नहीं हैं, लेकिन मुहम्मद तुगलक के शासनकाल की कीमतों का उल्लेख मूल्यों में तेज वृद्धि प्रतिबिम्बित करता है। इसलिए बरनी का मानना था कि, राज्य को व्यापारियों की कार्यप्रणाली पर सख्त नियंत्रण रखना चाहिए और बाज़ारों को विनियमित करना चाहिए (**भाग 13.7** देखिए)।

चूँकि राज्य की सैन्य शक्ति मुख्य रूप से घुड़सवार सेना पर निर्भर थी, इसलिए घोड़ा-व्यापार उस समय के सबसे आकर्षक व्यापारों में से एक था। सुल्तान के दरबार में आगंतुकों द्वारा घोड़े और दास को सबसे मूल्यवान उपहार (*खिदमती*) माना जाता था। शिहाबुद्दीन अल-उमरी एक घोड़े के व्यापारी, अली बिन मंसूर अल-उक़ैली, का उल्लेख करता है, जो बहरीन के अरब के *अमीरों* में से एक था और वह सुल्तान मुहम्मद तुगलक के लिए घोड़े लाया था (सिद्दीकी 1975: 14)। घोड़ों के व्यापार पर दलालों का कड़ा नियंत्रण था। इस तरह के लेन-देन के लिए घोड़ों की विभिन्न नस्लों के ज्ञान

के विशेषज्ञ की आवश्यकता होती थी। हाथियों में व्यापार एक शाही विशेषाधिकार था, इसलिए, सुल्तान को छोड़कर कोई भी उन्हें खरीद नहीं सकता था। युद्ध में प्राप्त लूट में हाथी सुल्तान के लिए आरक्षित थे। उन्हें अफ्रीकी तट से कैम्बे के बंदरगाह लाए जाने का वर्णन मिलता है। मध्यकाल के दौरान, श्रीलंका के हाथी अपनी विशेषताओं के कारण अत्यधिक मूल्यवान थे। दिल्ली सल्तनत के अधीन, दास व्यापार एक अन्य आकर्षक व्यवसाय था। हालांकि सुल्तानों में से अधिकांश के स्वयं गुलाम होने के बावजूद, सुल्तानों द्वारा दास व्यापारियों के लिए संरक्षण और सुविधा को बढ़ावा दिया गया। दासों को विश्व के विभिन्न क्षेत्रों से लाया जाता था। सुल्तान फिरोज़ शाह के अधीन एक लाख अस्सी हजार दास थे, जैसा कि अफ़ीफ द्वारा वर्णित किया गया है।

13.2.3 व्यापार तथा वाणिज्य और राज्य

कराधान

दिल्ली सल्तनत के अधीन ऐसे अनेक लेखन हैं जो व्यापारिक वर्ग से एकत्रित विभिन्न करों को उल्लेखित करते हैं। इनमें से कुछ हैं: *दलालत-ए बाज़ारहा* (या तो लेन-देन से दलाली या दलालों पर लगाया गया कर);*जज़्ज़ारी* (पशु-व्यापारियों पर लगाया जाने वाला कर); *चुंगी-ए गल्ला* (अनाज-व्यापारियों पर लगाया जाने वाला पारगमन कर); *मंडवी बर्ग* (सब्जी मंडी से वसूला गया कर); *गुलफरोशी* (फूल विक्रेताओं पर लगाया गया कर); *ज़रीबाह-ए तंबुल* (पान विक्रेता पर लगाया गया कर); *माही फरोशी* (मछली विक्रेताओं पर लगाया गया कर); *नखुद-ए बिरयान* (भुने हुए अनाज पर लगाया जाने वाला कर); *तह-बाज़ारी* (दुकानदारों से एकत्र सार्वजनिक भूमि पर लगाया गया कर); मुस्तग़िल (फिरोज़ शाह के शासनकाल के दौरान एकत्र किया गया दिल्ली शहर में मकान या दुकानों का किराया); *ख़ुरी* (फिरोज़ शाह के शासनकाल के दौरान लगाई गई एक तरह की बेगार जिसमें नए शहर फिरोज़ाबाद के निर्माण की शुरुआत के तुरंत बाद से व्यापारियों को पुरानी ईंटों का परिवहन करने के लिए कहा गया)। इसके अतिरिक्त, ऐसा माना जाता है कि मुहम्मद तुगलक ने सारे 'गैर-शरीयत' करों को समाप्त कर दिया था लेकिन फिरोज़ शाह तुगलक के काल में उन्हें दोबारा से लागू किया गया या अधिकारियों द्वारा जारी रखा गया था।

कर लगाने के अतिरिक्त, राज्य व्यापारियों को ऋण प्रदान करता था और उनसे ऋण उधार भी लेता था। बरनी और अफ़ीफ ने अलाउद्दीन द्वारा *मुल्तानियों* को ऋण की भारी अग्रिम राशि देने का ज़िक्र किया है, ताकि वह देश के विभिन्न क्षेत्रों से वस्तुएँ दिल्ली ला सकें। इसी तरह की घटनाओं के उल्लेख मुहम्मद तुगलक के शासनकाल से भी प्राप्त होते हैं। बलबन के शासनकाल के बारे में बरनी उल्लिखित करता है कि:

> दिल्ली के *मुल्तानियों* और *साहों* ने बड़ी रकम जमा कर ली थी और यह दिल्ली क्षेत्र (*इक्लीम*) के कुलीनों (*मुलूक और उमरा*) की संपत्ति की वजह से थी, क्योंकि वे जितना संभव हो सके मुल्तानियों और साहों से कर्ज लेते थे। कुलीनों ने अन्य पुरस्कारों के साथ अपने ऋणों का भुगतान *इक्ता* (*सर-ए इक्ता*) (के राजस्व) से किया। जब भी किसी *खान* या *मलिक* ने दावत दी और मेहमानों के रूप में भद्र व्यक्तिओं को आमंत्रित किया, उनके एजेंट (*कारकूनान*) *मुल्तानियों* और *साहों* के घरों की ओर दौड़ लगाते थे, उनके नाम के दस्तावेज (*क़ब्ज़*) देते थे और ब्याज पर ऋण लेते थे और इन महान् *मलिकों* की मजलिस के लिए पैसा लाते थे। उन्होंने इन ऋणों से शानदार पुरस्कार और उपहार वितरित किए।
>
> **(सिद्दीकी 1975: 31)**

इससे पता चलता है कि कुलीनों द्वारा धनी व्यापारियों से कर्ज लिया जाता था, जिसे वे *इक्ता* के माध्यम से या ब्याज सहित ऋण चुकाते थे। *क़ब्ज़* जमानत के दस्तावेज थे जिन्हें ऋण पर उत्पन्न होने वाले विवाद के मामलों में अदालत में ले जाया जा सकता था। कई बार, सुल्तान के आगंतुकों को सुल्तान के प्रति उपहार खरीदने के लिए *अमीर* व्यापारियों द्वारा ऋण दिया जाता था। बाद में *क़ब्ज़* की जाँच पर सुल्तान द्वारा लेनदारों को स्वयं उन्हीं ऋणों की वापसी की गई देखी गई। इस प्रकार, दिल्ली सल्तनत के अधीन ऋण देना एक फायदेमंद व्यवसाय था। इनमें से अधिकांश व्यापारी *मुल्तानी, साहा, बक्काल* और *सर्राफ* थे। ये मुख्यतः भारतीय थे, केवल कुछ प्रमुख व्यापारियों के ही उद्धरण ऐसे हैं जो विदेशी थे।

इन व्यापारियों के धन और संरक्षण ने उनके लिए सल्तनत समाज में उच्च सामाजिक स्थिति सुनिश्चित की। उन्हें अक्सर सरकारी अधिकारियों के रूप में महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त किया जाता था। उन्हें सुदूर क्षेत्रों से दास और हथियार जैसी उल्लेखनीय वस्तुओं की खरीद करने के लिए राज्य के एजेंट के रूप में नियुक्त किया जाता था। कुछ व्यापारियों को शाही टकसाल के *दरोगा* का प्रभार सौंपा गया था। हामिद मुल्तानी, जो कि एक संदिग्ध चरित्र का व्यापारी था, अलाउद्दीन खलजी द्वारा *काज़ी-उल कुज़्ज़ात* और *सद्र-ए जहान* के रूप में नियुक्त किया गया था। इसी व्यापारी की बात करते हुए, बरनी उसे अपने वृतांत में *मुल्तानी-बच्चा* (एक मुल्तानी का बेटा) और *मलिक-उल तुज्जार* (प्रमुख व्यापारी) कहता है।

राज्य प्रशासन में व्यापारियों की नियुक्ति की प्रक्रिया इल्तुतमिश के शासनकाल के साथ शुरू हो गई थी, अलाउद्दीन खलजी के शासनकाल में उसे संवर्धित किया गया और यह मुहम्मद तुगलक के शासनकाल में चरम सीमा पर पहुंच गई, जिसने समाज के सभी वर्गों के लोगों को महत्वपूर्ण राजकीय पदों पर नियुक्त किया। मुहम्मद तुगलक के शासनकाल में *मलिक-उल तुज्जार*, शिहाबुद्दीन अल-कज़रूनी को *इक्ता* में कैम्बे का शहर और *विज़ारत* का आश्वासन दिया गया था। इनमें से कई नियुक्तियाँ कैम्बे शहर में की गईं थीं, जो समुद्री व्यापार नेटवर्क का एक महत्वपूर्ण हिस्सा था। इसके अतिरिक्त, व्यापारी तुगलक काल में राजस्व पर खेती की *इजारा* व्यवस्था का हिस्सा भी थे। हालांकि हर कोई इन कार्यभारों को प्राप्त करने में सफल नहीं हुआ।

13.3 गुजरातः एक अध्ययन

प्रारंभिक 14वीं शताब्दी में दिल्ली सल्तनत द्वारा गुजरात को कब्जे में लेने से पहले, चालुक्यों के अधीन[1], इस क्षेत्र की अर्थव्यवस्था की प्रकृति प्रधानतः व्यापारिक थी जो वित्त और ऋण की एक स्थापित प्रणाली पर आधारित तीव्र व्यापारिक गतिविधियों के साथ जुड़ी हुई थी। अर्थव्यवस्था की यह प्रणाली सैन्य अभिजात वर्ग और धनी व्यापारियों द्वारा नियंत्रित थी, जिसके परिणामस्वरूप किसानों पर अत्याचार और घरेलू दास के साथ अमानवीय व्यवहार जैसे घटनाक्रम हुए। अर्थव्यवस्था मानसून आधारित कृषि पर केंद्रित थी।

शासन उच्च पदाधिकारियों, जिन्हें *राजपुत्र* कहा जाता था और जो सड़कों की सुरक्षा के लिए भी जिम्मेदार थे, के साथ अच्छी तरह से सुव्यवस्थित था। शहरों और गाँवों में प्रशासन *पंचकुला* (पाँच बुज़ुर्गों) की सहायता से किया जाता था। *पंचकुला* का परामर्श घर की बिक्री और खरीद से लेकर महिला दास के मामलों तक में लिया जाता था। *महांतका*, आमतौर पर एक बनिया, गाँव के प्रशासन के साथ जुड़ा अकाउंटेंट और क्लर्क होता था। ये भी *पंचकुला* के सदस्यों में से थे।

माल को एक जगह से दूसरी जगह ले जाने के लिए व्यापारियों को विभिन्न प्रकार के कर देने पड़ते थे, जैसे कि चुंगी, उत्पाद शुल्क और राहदारी। कई प्रकार के आज्ञा-पत्र, आदि संबंधित अधिकारियों द्वारा प्राप्त करने पड़ते थे। बहुत से अवसरों पर, व्यापारियों को ज़्यादतियों का सामना करना पड़ता था। गुजरात के व्यापारिक वर्ग को अपनी ईमानदारी के कारण एक उच्च प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त था। यह वर्ग श्रीमाली, परागावते, वयादा, ओसवाल और गुर्जर जातियों द्वारा गठित था। यह *बनियों* के मुख्य उपखंड थे। ऋण के लिए जमानत प्राप्त करने की प्रथा एक सामान्य प्रवृत्ति थी। नकद भुगतान प्रचलन में था। सोने और चाँदी के *तनके* भी चलन में थे। समुद्र द्वारा किया जाने वाला व्यापार ईरानी और अरबी व्यापारियों को गुजरात के क्षेत्र में ले आया था। कैम्बे में धनी व्यापारिक समुदाय के मुस्लिम (*ख्वाजा*) रहा करते थे, जिन्हें 1300 में एक बड़ा झटका लगा जब शहर को खलजियों द्वारा लूटा गया था।

इस प्रकार पूर्व-सल्तनत काल में, केवल कथित 'भारतीय सामंतवाद' के संस्थानों के अतिरिक्त गुजरात की अर्थव्यवस्था में और भी बहुत कुछ था (गुजरात के समुद्री व्यापारिक नेटवर्क के विस्तार के लिए **भाग 13.4** देखें)।

[1] इस क्षेत्र के अध्ययन के लिए असाधारण स्रोत *लेखापद्धति* है ('लिखित दस्तावेजों के नमूने'), जैसा कि प्रसाद (2011) में देखा जा सकता है। यह भूमि अनुदान सहित विभिन्न प्रकार के दस्तावेजों के नमूने प्रदान करते हैं और 8वीं-15वीं शताब्दी गुजरात में जीवन के विभिन्न पहलुओं पर अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं।

1) निम्नलिखित पर टिप्पणी कीजिए।

क) *कारवानी* .....

.....

ख) *मुल्तानी* .....

.....

ग) *कब्ज़* .....

.....

घ) *दलाल और सर्राफ* .....

.....

2) 13वी-14वीं शताब्दी के मुख्य स्थल व्यापारिक मार्गों की सूची प्रदान कीजिए।

.....

.....

.....

3) दिल्ली सल्तनत के अधीन व्यापार के विस्तार के लिए उत्तरदायी कारकों की चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

4) दिल्ली सल्तनत द्वारा व्यापारी समुदायों पर लगाए गए विभिन्न करों की चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

5) गुजरात के उदाहरण के साथ दिल्ली सल्तनत के अधीन व्यापार के स्वरूप का परीक्षण कीजिए।

.....

.....

.....

13.4 समुद्री व्यापारिक नेटवर्क

हिंद महासागर में वाणिज्यिक यातायात के इतिहास के चिह्न सुदूर अतीत में खोजे जा सकते हैं और इस व्यापारिक नेटवर्क में व्याप्त उत्पादन और विनिर्माण के विभिन्न केंद्र, भारत के समस्त समुद्रतटीय क्षेत्रों **लिट्टोरल**, (**Littoral**) में व्याप्त थे। इसकी पश्चिमी-एशिया और दक्षिण-पूर्व एशिया के मध्य भौगोलिक सामरिक स्थिति की वजह से भारत का लंबी-दूरी की व्यापारिक गतिविधियों की प्रक्रिया में हमेशा प्रमुख आर्थिक स्थान रहा है। उपमहाद्वीप की बाज़ार में अत्यधिक प्रतिस्पर्धी कीमतों पर व्यापार योग्य वस्तुओं की एक विस्तृत श्रृंखला प्रदान करने की अपार आर्थिक क्षमता और योग्यता थी। इनमें दोनों – खाद्य पदार्थ – जैसे चावल, चीनी और तेल के साथ-साथ कच्चा माल, जैसे कपास और नील – शामिल था। हालांकि इस व्यापार का बड़ा हिस्सा तटीय था, विदेशी व्यापार के लिए कार्गो की नियमित आपूर्ति सुनिश्चित करने के लिए अंतर्क्षेत्र (hinterland) की आवश्यकता थी, जिसने विनिमय के प्रमुख समुद्री केंद्रों के आसपास क्षेत्रीय व्यापार के कई केंद्रों के उद्भव को सुगम बनाया। स्ट्रैबो, एरियन तथा अन्य प्राचीन लेखकों के अनुसार भारतीय जहाज मिस्र और अन्य स्थानों से ऊनी-कपड़ा, पीतल, सीसा, टिन, काँच के बर्तन, मूंगा, गढ़ी चाँदी (wrought silver), सोने और चाँदी के बुलियन और कई प्रकार की शराब का आयात किया करते थे। और उन्होंने मसालों, हीरे, नीलम, मोती और अन्य रत्न, कपास, रेशम, काली मिर्च और इत्र का निर्यात

किया। डॉ. रॉबर्टसन के अवलोकन के अनुसार, एरियन के लेखन में भारत द्वारा निर्यात की गई वस्तुओं के विवरण की एक रोमन कानून द्वारा पुष्टि होती है जिसमें भारत से आने वाली सामग्रियों पर लगने वाले करों के भुगतान का ज़िक्र है। भारत के हीरे, नीलम, माणिकों को हमेशा उच्च स्थान प्राप्त था।

गुजरात ने एशियाई व्यापार में एक मुख्य भूमिका निभाई। चालुक्यों के समय से लेकर हाल ही के इतिहास में गुजरात पश्चिमी भारत का सबसे महत्वपूर्ण व्यापारिक संधि-स्थल साबित हुआ है। यह पश्चिमी विश्व की ओर एक प्रवेश द्वार है और यह पश्चिम से पूर्वी व्यापारिक मार्ग में पड़ता है, अर्थात्, यूरोप से लेकर दक्षिण-पूर्वी एशियाई द्वीप समूह तक। 15वीं शताब्दी के दौरान गुजरात की इस भूमिका को और मजबूती प्राप्त हुई, जो एशियाई व्यापार के पूर्णतः स्पष्ट क्षेत्रों के विखंडन का गवाह बना। उत्तरोत्तर अरब व्यापारियों की हिंद महासागरीय व्यापार में भागीदारी केवल पश्चिम-एशिया और भारत के पश्चिम तट के मध्य व्यापार तक ही सीमित रह गई थी। भारतीय व्यापारियों ने लाल सागर-फारस की खाड़ी क्षेत्र और मलक्का तक फैले हुए बंगाल की खाड़ी की समुद्रतटीय क्षेत्र (Littoral) की व्यापारिक गतिविधियों में एक बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। हालांकि, व्यापार के स्वायत्त क्षेत्रों का कोई स्पष्ट सीमांकन नहीं था, भारतीय व्यापारियों और विदेशी व्यापारियों के मध्य वाणिज्यिक नेटवर्क और विभिन्न व्यापारिक शक्तियों के साथ विशिष्ट-परस्पर निर्भरता और पारस्परिक सहयोग था। संलग्न बैंकिंग और क्रेडिट प्रणाली अंततः इस क्षेत्र में अच्छी तरह से विकसित हुईं। इस बढ़ते व्यापार नेटवर्क में भारत की सफलता के पीछे सुविकसित कृषि क्षेत्र, एक संगठित बाज़ार क्षेत्र, श्रम विभाजन की गहनता, एक सुविकसित मौद्रिक और क्रेडिट संरचना, एक उत्तरदायी व्यापारिक समुदाय और उसकी व्यापारिक नेटवर्क के मध्य में सामरिक स्थिति भी ज़िम्मेदार थी। यह ध्यान देने योग्य है कि व्यापार के प्रमुख केंद्रों में से अधिकांश जल्द ही व्यापक समृद्धि के केन्द्र बन गए, जिसने बदले में उन्हें अपार शक्ति एकाग्रता के केंद्र के रूप में उभरने में मदद की। इस प्रक्रिया में, गुजराती व्यापारी एक आर्थिक समूह के रूप में विकसित हुए जिनके पास यथार्थ पूँजी थी और गुजरात के बंदरगाह एक आर्थिक भौगोलिक क्षेत्र के रूप में जिसने शुरुआती वाणिज्यिक पूँजीवाद के अनुभव को थोक वस्तुओं के प्रवाह के साथ भारत में प्रवेश करना सुगम बनाया। गुजरात में पूरी तरह से आंतरिक बलों ने बाज़ार के तीव्रीकरण, व्यापारी पूँजी का संचय, मुद्रीकरण और शिल्पकारों की श्रेणी व्यवस्था, और शहरी केंद्रों और शहरी शिल्प प्रणाली के विकास की दिशा में काम किया।

इसके अतिरिक्त क्षेत्र में प्राकृतिक संसाधनों की भी भरमार थी। *मिरात-ए अहमदी* बताती है कि लगभग सभी प्रकार के खाद्यान्न देश में बहुतायत में उगते थे। बाजरा और धान इस क्षेत्र का मुख्य भोजन था। बाजरे का बड़ी मात्रा में उत्पादन, न केवल लोगों को खुद के संभरण में मदद करता था बल्कि यह मवेशियों और घोड़ों को पोषित करने में भी मददगार था। खाद्यान्न के अतिरिक्त उस क्षेत्र में फलों को भी एक बड़ी मात्रा में उगाया जाता था। जैसा कि *मिरात* में वर्णित किया गया है कि, गुजरात में असंख्य फल देने वाले पेड़ लगाए जाते थे जैसे आम और *खिरनी*, तरबूज और नाशपाती और अन्य सामान्य फल। बड़ौदा से पाटन तक लगभग 100 *कोस* के बीच विभिन्न प्रकार के फल, वनस्पति, खीरे सहित विभिन्न प्रकार के खरबूज़ों के साथ अच्छे गुणों की नाशपाती पाई जाती थी। बरसात के बाद की मिट्टी नम हो जाती थी और सर्दियों में फसलों में ओस से उनकी नमी निकलती थी। यहाँ की मिट्टी बहुत उपजाऊ और दृढ़ होती है। अंगूर का वर्ष में दो बार उत्पादन किया जाता था और कपास के पौधे विलो और चौड़ी पत्ती वाले वृक्ष की तरह विकसित होते थे।

इसके अतिरिक्त, विभिन्न प्रकार की सुगंध वाली जड़ी-बूटियाँ, फल और सब्जियाँ इस क्षेत्र में उगाई जाती थीं। 17वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में, एबे कारे उल्लिखित करते हैं कि गुजरात में लगभग हर पुर्तगाली के घर में एक बाग के साथ बगीचा हुआ करता था। इस देश में इतने विस्तृत प्राकृतिक संसाधन थे कि यहाँ कमोबेश सभी प्रकार के मसाले और अनाज एशिया के विभिन्न भागों को निर्यात किए जाते थे, और खाद्य पदार्थों को शायद ही कभी आयात किया जाता था और ग्रामीण इलाकों की सड़कें छायादार पेड़ों से घिरी होती थीं और वे विशिष्ट प्राकृतिक सुंदरता से भरपूर थीं।

विशेष गुणवत्ता वाला नील (इंडिगो; indigo) केवल इसी क्षेत्र में पाया जाता था। वह एक महत्वपूर्ण

कृषि उत्पाद था जो यूरोप और एशिया की मंडियों में बड़े पैमाने पर निर्यात किया जाता था। यह एक शाक (herb) है जो रोज़मेरी (rosemary) की तरह बढ़ती है; और बीज से प्राप्त किया जाता है; इसे सूख जाने पर एकत्र किया जाता है फिर उसे कई बार भिगोया और सुखाया जाता है, जब तक वह नीला न हो जाए। पाइराड ऑफ लावल के अनुसार, 'यह डाई के रूप में बहुत बेशकीमती है और इंडीज की सबसे अच्छी वस्तुओं में से एक है'। इसका गुजराती व्यापारियों द्वारा बड़ी मात्रा में निर्यात किया जाता रहा था और यह इस क्षेत्र के व्यापार की एक महत्वपूर्ण वस्तु माना जाता था। इस जगह की जैव-विविधता अत्यधिक थी और यह विविधता इस क्षेत्र में बड़ी मात्रा में व्यापार को आरंभ करने और प्रोत्साहित करने में सहायक थी।

समुद्री व्यापार मार्ग

भारत का पश्चिमी तट सिंध से लेकर मालाबार तक अरब की खाड़ी, लाल सागर और पूर्वी अफ्रीका से जुड़ा हुआ था। अरब की खाड़ी के मुख्य बंदरगाह होरमुज़ और बसरा थे, जबकि लाल-सागर पर स्थित ऐडन, मोचा और जेद्दा महत्वपूर्ण संयोजक बंदरगाह थे। हालांकि, 13वीं शताब्दी से पहले कैस इस क्षेत्र का सबसे प्रसिद्ध बंदरगाह था जहाँ पर प्रसिद्ध गुजराती बोहरा समुदाय की कॉलोनी बसी हुई थी। हालांकि, क़ैस के पतन के साथ होरमुज़ उभरा। मार्को पोलो 1290 में अपने कैस भ्रमण के समय लिखता है कि, क़ैस भारत के लिए ईरानी घोड़ों के निर्यात का मुख्य केंद्र था। फारस की खाड़ी और लाल-सागर के इन बंदरगाहों के माध्यम से भारतीय वस्तुएँ डेमस्कस और यूरोप पहुँचती थीं। एलेप्पो और अलेक्जेंड्रिया भूमध्यसागर को पार करके यूरोप के बाज़ार में पहुँचने के मुख्य बिंदु थे। गुजरात और मालाबार बंदरगाह भी मलक्का जलडमरूमध्य (Strait) और अचिन के बंदरगाहों से जुड़े हुए थे। मुख्य भारतीय बंदरगाह जो पश्चिमी तट के समुद्री व्यापार में संलग्न थे वह थे गुजरात तट पर कैम्बे, अपने विस्तारित बंदरगाहों गांधार और घोगा के साथ; दाभोल, और बाद में लाहिरी बंदर सिंध क्षेत्र के मुख्य बंदरगाह थे; जबकि क्वीलोन और कालीकट मालाबार क्षेत्र के मुख्य पुनर्निर्यात (entrepot) केंद्र थे। अपने समुद्री संपर्कों के कारण ज़मोरिन के राजा को *समुद्री राजा* के नाम से जाना जाता था। पूर्वी-अफ्रीकी तटों के लिए अदन (Aden) संपर्क की कड़ी था। यहाँ से वस्तुएँ एज़ाब के पूर्वी-अफ्रीकाई तट पर निर्यात की जाती थीं, जहाँ से वे वस्तुएँ ऊँटों द्वारा स्थल कारवाँ के माध्यम से ऊपरी मिस्र के क़ैस और फुस्तात के महत्वपूर्ण बाज़ार शहरों में पहुँचाई जाती थीं। हालांकि, मध्य 14वीं शताब्दी तक एज़ाब का पतन शुरू हो गया था और उसके बाद अदन-जेद्दा-तूर मार्ग प्रमुख हो गया था। दक्षिण-अरब तट पर अश-शिहीर और धोफर जैसे बंदरगाह थे जो घोड़े और शहद के व्यापार के मुख्य केंद्र थे। बदले में उन्हें मालाबार तट से चावल प्राप्त होते थे।

पूर्वी तट पर बंगाल की खाड़ी, कोरोमंडल से लेकर बंगाल तक फैला एक और महत्वपूर्ण समुद्री क्षेत्र था, जो दक्षिण-पूर्वी एशिया के साथ व्यापार की एक महत्वपूर्ण कड़ी था। वह मलक्का जलडमरूमध्य के माध्यम से दक्षिण-चीन और इंडोनेशिया द्वीपसमूह के साथ जुड़ा हुआ था। हालांकि, व्यापार अनन्य नहीं था। हम मालाबार तट के लिए समुद्री-यात्रा करते विशालकाय चीनी जंक (junks) जहाजों की उपस्थिति के बारे में सुनते हैं। इसी प्रकार, गुजराती व्यापारी पश्चिमी-तट के लिए चीनी सामानों की लदान करते थे। पश्चिम के व्यापार की तुलना में, चीन के साथ भारत का पूर्वमुखी व्यापार हावी था। इस व्यापार में दक्षिण-पूर्व एशिया का हिस्सा तुलनात्मक रूप से नगण्य था। पश्चिममुखी व्यापार के विपरीत, यहाँ चीन के साथ लाभप्रद वे जहाज और नौकाएँ थीं जो सीधे, रास्ते में बिना किसी बन्दरगाह पर रुके, बिना किसी बाधा के, चीन के लिए रवाना हो सकती थीं। इसी प्रकार, चीनी जहाज भारतीय बंदरगाहों के लिए भी सीधे चला करते थे। हालांकि, झेंग ही की चंपा, जावा, सुमात्रा होते हुए कालीकट की महान् ऐतिहासिक यात्राओं के बाद, 1433 के अंत में मिंग शासकों ने अचानक अपने नौसैनिक उद्यमों को रोक दिया और धीरे-धीरे भारतीय बंदरगाहों में चीनी जहाजों की संख्या में लगातार गिरावट आई, जिसे पुर्तगालियों की बढ़ती उपस्थिति ने अंतिम झटका दिया। पश्चिमी-तट और दक्षिण-चीन के मध्य में चंपा, जावा और सुमात्रा के बंदरगाह थे। दक्षिण-चीन में हांगझाउ (ज़ैतुन) सबसे प्रमुख बंदरगाहों में से एक था (देखें **मानचित्र 13.2**)।

तटीय व्यापार गुजरात, मालाबार और कोरोमंडल तट के माध्यम से सिंध से लेकर बंगाल तक समृद्ध अवस्था में था।

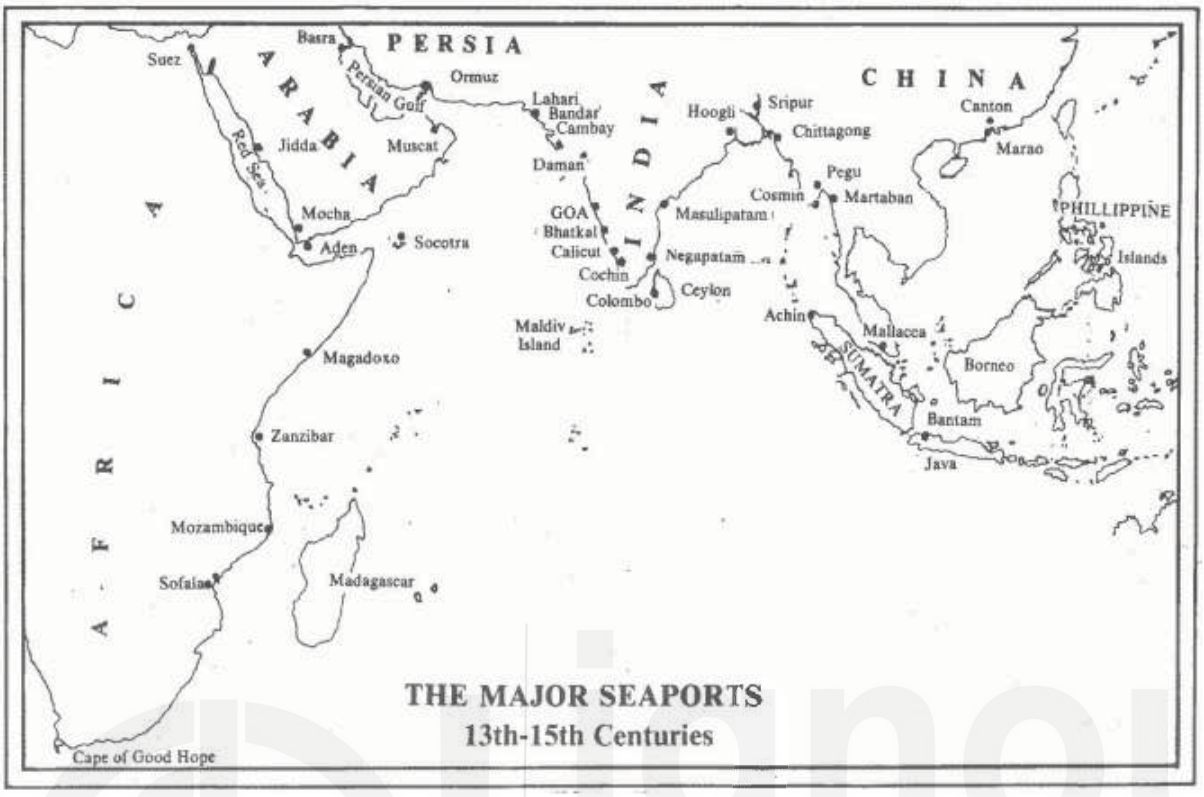

मानचित्र 13.2: 13वीं-15वीं शताब्दी के प्रमुख बन्दरगाह

स्रोत: ई.एच.आई.-03: *भारत 8वीं सदी से 15वीं सदी तक,* खंड 6, इकाई 21, पृ. 26

13.5 दिल्ली सल्तनत के अधीन व्यापार

दिल्ली सुल्तानों ने उपमहाद्वीप के एकीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। इसके अतिरिक्त अलाउद्दीन खलजी और मुहम्मद बिन तुगलक जैसे शासकों ने देश की सरहदों को मंगोल खतरे से सुरक्षित करने की कोशिश की थी। इसके परिणामस्वरूप, मध्य एशियाई स्टेप्स क्षेत्र का एकीकरण भी हुआ, और भारत से चीन और काला सागर के लिए नए व्यापारिक मार्गों की शुरुआत भी हुई। दिल्ली सुल्तानों के अधीन संचार-तंत्र में भी सुधार आए। शहरों को जोड़ने वाली मुख्य सड़कें भी अच्छी स्थिति में बनी रहीं। मुहम्मद बिन तुगलक को – उत्तर-पश्चिम में पेशावर से लेकर पूर्व में सोनारगांव तक और उत्तर में दिल्ली से लेकर दक्षिण में दौलताबाद तक – शाही सड़कों के निर्माण का श्रेय दिया जाता है।

सल्तनत काल के दौरान, दिल्ली और मुल्तान के बाज़ार भी *कारवाँ* व्यापार के माध्यम से लाहौर और मध्य-पूर्व के बाज़ारों की व्यापारिक गतिविधियों के साथ मुख्य रूप से जुड़े रहे। हालांकि, मध्य-पूर्व से भारत की ओर आने वाला *कारवाँ* व्यापार मंगोलों के नियमित आक्रमणों से प्रभावित हुआ। इसके परिणामस्वरूप दिल्ली और मुल्तान के बाज़ार संकुचित हुए। गुजरात के बंदरगाहों के अधिग्रहण ने दिल्ली सुल्तानों को हिंद महासागर नेटवर्क के फलते-फूलते व्यापार तक पहुँच प्रदान की। अलाउद्दीन खलजी ने *मलिक अल-तुज्जार,* व्यापारियों का राजा, जो सुल्तान के लिए वाणिज्यिक गतिविधियों की देख-रेख के लिए जिम्मेदार था, की नियुक्ति की। समुद्री व्यापार ने काफी हद तक *कारवाँ* व्यापार की जगह ले ली।

भारत से शुरू वाणिज्यिक नेटवर्क का आर्थिक आधार वास्तव में निर्मित वस्तुओं की बड़ी मात्रा की उपलब्धता में था, जिसमें सबसे महत्वपूर्ण वस्तु विभिन्न प्रकार के वस्त्र थे। इन वस्त्रों में से सबसे महत्वपूर्ण स्थान गुजरात में निर्मित वस्त्र थे। गुजराती और कोरोमंडल कपड़े की इंडोनेशिया, मलेशिया, थाईलैंड और बर्मा के साथ-साथ लाल सागर, फारस की खाड़ी और पूर्वी एशिया के बाज़ारों में बहुत अधिक माँग थी। भारत द्वारा पड़ोसी देशों को उसके कृषि और खनिज उत्पादों का भी निर्यात किया गया। इसके बदले में, भारत में इंडोनेशिया से खड़े मसाले जैसे लौंग, जायफल और जावित्री; और पश्चिमी-एशिया से घोड़े, माणिक (रुबी) जैसे कीमती पत्थर और धातु, इत्यादि

आयात किए जाते थे। भारत में आयातित सबसे महत्वपूर्ण गैर-कीमती धातु मलाया से आने वाली टिन थी। कीमती धातु, जैसे चाँदी, बड़ी मात्रा में पश्चिमी-एशिया से आयात की जाती थी।

हिंद महासागर नेटवर्क का व्यापार विभिन्न वस्तुओं से युक्त था। व्यापारी नमक, चीनी, अनाज और कपड़े जैसी बुनियादी आवश्यकताओं की वस्तुओं के आदान-प्रदान के साथ-साथ मसाले, घोड़े, चीनी मिट्टी के बर्तन, अगरबत्ती, हाथी दाँत, काँच, आभूषण और उत्कृष्ट कट वाले कीमती पत्थरों जैसी विलासिता की वस्तुएँ भी आदान-प्रदान किया करते थे। भारतीय बाज़ार उपभोक्ता वर्ग के लिए युद्ध में प्रयुक्त जानवर, मसाले और औषधियाँ, दुर्लभ वस्तुएँ, खिलौने और विदेशी वस्त्र; और पीतल उद्योग के लिए आधार धातुएँ आयात किया करते थे। 14वीं शताब्दी में दिल्ली में बसे कुलीनों के लिए विशाल मात्रा में मूल्यवान वस्त्र आयात किए जाते थे।

हिंद महासागर के व्यापारिक संसार में पुर्तगालियों के आने से पूर्व, पश्चिमी और दक्षिण-एशिया के मध्य एक फलता-फूलता सिक्का-धातु व्यापार अस्तित्व में था। विनीशियन *ज़ेच्चीनों* के साथ मिस्र और तुर्क सुल्तानी और अदन की दीनार भारत में आने वाले आयातों में सर्वप्रथम थे। उसी समय के दौरान गुजरात, पश्चिमी-भारत और बंगाल में फारस की खाड़ी के बंदरगाह होरमुज़ से होने वाला व्यापार इन क्षेत्रों में प्रचुर मात्रा में चाँदी लाया। अलाउद्दीन खलजी के शासनकाल की प्रारंभिक अवधी में, जब दिल्ली की सेनाओं ने गुजरात पर कब्जा कर लिया था, सेनापति नुसरत खान ने वहाँ के लोगों के धन को लूटा और उनके दासों को कब्ज़े में कर लिया, जिनमें प्रसिद्ध मलिक काफूर भी शामिल था।

आवश्यकता की वस्तुएँ और दैनिक उत्पाद वाणिज्यक लेन-देन का एक हिस्सा थे। इब्न हौकल उल्लेख करते हैं कि, आम, नारियल, नींबू और चावल का बहुयात में उत्पादन किया जाता था और उनका उपयोग व्यापार के लिए किया जाता था। मार्को पोलो अदरक, काली मिर्च और नील की बड़ी मात्रा में विद्यमानता का वर्णन करता है जो 13वीं शताब्दी के अंत में गुजरात में पाई जाती थी। शहद काफी मात्रा में बनाया जाता था, हालांकि फमहल, सिंदन, सैमूर और कैम्बे में कोई खजूर के पेड़ नहीं थे। इसके अतिरिक्त, वह वर्णन करता है कि कैम्बे और सैमूर (चौल) के मध्य के क्षेत्र में सघन खेती होती थी। देबल (दाभोल) और कच्छ के मध्य के क्षेत्र, और कच्छ से सोमनाथ और पाटन के मध्य का क्षेत्र गोंद, लोहबान और बाम उत्पादन में समृद्ध था। विशाल मात्रा में मालवा की चीनी गुजरात के तट से जहाजों में कई राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्थानों के लिए निर्यात की जाती थी। 11वीं शताब्दी के अंत में गुजरात के व्यापार की प्रचुरता तथा समृद्धता को वर्णित किया जाता है। रशीदउद्दीन (1300) के लेखन में गुजरात को एक विशाल भू-भाग के रूप में संदर्भित किया गया है, जिसमें महत्वपूर्ण केंद्र कैम्बे, सोमनाथ, कोंकण और थाने थे। गुजरात का ऐसा विवरण, जिसकी बराबरी पूरे पश्चिमी तटीय क्षेत्र से की गई थी, भौगोलिक दृष्टि से थोड़ी गलत व्याख्या लगती है।

व्यापार की प्रमुख वस्तु वस्त्र था। मालाबार से सागौन, लकड़ी, मसाले, दवाएँ, कीमती पत्थर और विभिन्न प्रकार की विलासिता की वस्तुएँ निर्यात की जाती थीं। इसके बदले में, भारत घोड़े, खिलौने, मसाले, दवाएँ, मूल्यवान वैभवशाली वस्त्र और पीतल आयात किया करता था। दिल्ली में शाही वर्ग और कुलीनों की माँग पर विलासिता की वस्तुओं का आयात 14वीं शताब्दी से विस्तृत हुआ। 15वीं शताब्दी में यूरोपीय वस्त्र दक्खन में आयात किए जाने लगे। दिल्ली सुल्तानों ने चीनी रेशम और चीनी पकी हुई मिट्टी के बर्तन उपयोग करने प्रारंभ कर दिए थे। ऐसे बर्तन गौड़, बंगाल की राजधानी, में शासक वर्ग द्वारा विशाल मात्रा में उपयोग किए जाते थे। बंगाल और सप्तग्राम के तट पर इसके प्रत्यक्ष प्रमाण प्राप्त होते हैं। **काहिरा-गैनिज़ा** दस्तावेजों में यहूदी व्यापारियों द्वारा सभी प्रकार के बर्तनों के निर्यात का ज़िक्र मिलता है, जिसमें विशाल मात्रा में धातु और काँच के बर्तन शामिल थे। गुजरात होर्मुज़ का मुख्य व्यापारिक सहभागी था और जैसा कि जीन ऑबिन द्वारा दर्शाया गया है कि, अपने घाटे की आपूर्ति करने और अपने भुगतानों को संतुलित करने के लिए होर्मुज़ भारत को बड़ी मात्रा में सिक्के, विशेष रूप से चाँदी के सिक्के, भेजता था। होर्मुज़ ज्यादातर घोड़ों के माध्यम से उसके आयात के लिए भुगतान करता था। 1516-17 में, भारत में प्रति वर्ष लगभग हजार घोड़े निर्यात किए जाते थे, जो 16वीं शताब्दी के मध्य तक दोगुना हो गए थे। घोड़ों का व्यापार इतना लाभदायक था कि इस व्यापार में लगे हुए व्यापारी बाज़ार के सबसे महत्वपूर्ण व्यापारी बन गए।

अंतः एशियाई व्यापार के अतिरिक्त, कैम्बे ने भारत के तटीय व्यापार में भी हिस्सा लिया। भारत में माल की विभिन्न किस्मों का उत्पादन और वितरण, निर्वाह और व्यावसायिक क्षेत्रों के अंतर-प्रवेश की एक प्रक्रिया के माध्यम से संपादित किया जाता था। चूँकि आबादी का ज्यादातर हिस्सा गाँव में निवास

करता था, और उनकी वस्तुओं और सेवाओं की आवश्यकताओं को उपभाग की वस्तुओं के उत्पादन के माध्यम से और पारस्परिक विनिमयों के एक नेटवर्क के माध्यम से संतुष्ट किया जाता था। यह विनिमय आर्थिक गतिविधियों का अपेक्षाकृत छोटा अनुपात था। फिर भी, लगभग हर स्तर पर और आर्थिक जीवन के हर क्षेत्र में वस्तुओं का आदान-प्रदान अपने परिमाण और जटिलताओं में महत्वपूर्ण था। निर्वाह-उन्मुख उत्पादन[2] की प्रधानता अधिशेष और घाटे द्वारा संशोधित की गई थी, जिसने बहु-स्तरीय और बहुआयामी वाणिज्यिक गतिविधियों की आवश्यकता उत्पन्न की (बाज़ार-उन्मुख विनिमय)। गुजरात क्षेत्र के अन्य भागों के साथ व्यापारिक संबंध थे, जैसे कि मालाबार, बंगाल और कोरोमंडल। इसके अतिरिक्त, गुजरात की अवस्थिति ने उसके बंदरगाहों को इंडो-गैंजेटिक मैदान और मालवा के विशाल भू-बंद-क्षेत्र के लिए प्राकृतिक निर्गम द्वार बना दिया था। चूँकि गुजरात की अवस्थिति मध्य-एशिया के साथ व्यापार के लिए अनुकूल थी, इसलिए बहुत से पूर्वी उत्पादन केंद्रों ने अपने उत्पादों को गुजरात की *मंडियों* के लिए भेजा न कि बंगाल के लिए। गुजरात ज्यादातर वाणिज्यिक फसलों का उत्पाद करता था जैसे कपास, नील और वनस्पति रंजक और इसके परिणामस्वरूप गुजरात को खाद्यान्न उत्पादन की कमी का सामना करना पड़ा। इस कमी को वह मालवा और इंडो-गैंजेटिक मैदान जैसे अधिशेष उत्पादक क्षेत्रों के साथ व्यापार करके पूरा करता था। राजस्थान और दिल्ली के उत्पाद कैम्बे के बाज़ारों में पाए जाते थे। भौगोलिक दृष्टि से गुजरात दक्खन पठार के संबंध में अनुकूलता से अवस्थित था। बुरहानपुर-खानदेश मार्ग और तटीय मार्ग ने गुजरात को दक्खन के लिए सुलभ बना दिया था।

14वीं शताब्दी के दौरान, मुहम्मद बिन तुगलक और फिरोज़ तुगलक ने दिल्ली सल्तनत के चारों ओर बगीचों के आगमन को चिह्नित किया। फिरोज़ शाह तुगलक को दिल्ली के इर्द-गिर्द 1200 बगीचे बनाने का श्रेय दिया जाता है, 80 सलोरा तटबंध पर और 44 चित्तौड़ में। सिकंदर लोदी ने ईरान के अनार की तुलना में जोधपुर के अनार उत्पादन पर विशेष ध्यान दिया। इन बगीचों ने फलों के उत्पादन और गुणवत्ता में वृद्धि की, विशेष रूप से अंगूर की फसल में। मेरठ और धौलपुर में शराब के उत्पादन में उन्नति हुई। इन बगीचों के विकास ने फल व्यापार में वृद्धि की और रोजगार के नए रास्ते भी खोले।

सल्तनत काल के दौरान, भारत एशियाई-विश्व और उसके आसपास के पूर्वी-अफ्रीका क्षेत्र के लिए समृद्ध और अच्छी तरह से स्थापित घरेलू व्यापार के साथ विनिर्माण कार्यशाला बना रहा। इस अवधि में अनेक अन्य शहरों की संख्या में वृद्धि हुई जैसे मुल्तान, लाहौर, अनहिलवाड़ा, कड़ा, खम्भात, सोनारगाँव और लखनौती। बंगाल और गुजरात के शहरी केंद्र मोटे और उत्कृष्ट कोटि के कपड़े, दोनों, के उत्पादन केंद्रों के रूप में समृद्ध थे। जबकि खम्भात कपड़े, और सोने और चाँदी के काम के लिए प्रतिष्ठित था, सोनारगाँव कच्चे रेशम और मलमल के लिए प्रसिद्ध था। चूंकि घुड़सवार सेना सैन्य और राजनीतिक प्रणाली का आधार बन गई थी, इसलिए 13वीं शताब्दी के बाद से बड़ी संख्या में घोड़ों का आयात किया जाता था। लकड़ी का कपास धुनने का यंत्र, *चरखा*, पैरों द्वारा चलाया जाने वाला *करघा* और रेशम-उत्पादन के आगमन के साथ कपड़ा उद्योग ने असामान्य प्रगति की। अरब भूगोलवेत्ता अल-उमरी कहता है कि, कुलीन सोना और चाँदी आयात किया करते थे। गुजरात और कश्मीर अपनी कढ़ाई के लिए प्रसिद्ध थे, गुजरात अपने सोने और चाँदी की कढ़ाई के लिए और कश्मीर अपने शॉल उद्योग के लिए प्रसिद्ध था। इरफान हबीब के अनुसार (रेचौधरी और हबीब 1982: 80) कश्मीर का ऊन निर्माण, विशेष रूप से कालीन और शॉल बुनकरों, को दिल्ली के शाही वर्ग द्वारा संरक्षण प्राप्त था। 14वीं शताब्दी के अंत में कीमती धातुओं के संचयन का सबूत भड़ौंच मुद्रा-संग्रह (coin-hoard) द्वारा मिलता है। थोक मात्रा में सोने और चांदी के सिक्के मिस्र और सीरिया के मामलुक साम्राज्यों के प्राप्त होते हैं, और यमन के रसुलिद साम्राज्य से कम संख्या में।

पूर्वी हिंद महासागर और चीन सागर की समुद्री गतिविधियों के विस्तार के रूप में आरंभिक मध्यकालीन शताब्दियों में व्यापार के पैटर्न में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। तारिम बेसिन और अफगानिस्तान घाटी के दर्रों के माध्यम से पश्चिमी भारत के बंदरगाहों के लिए चीन से पुराना रेशम मार्ग इस समय के सर्वप्रमुख व्यापारिक मार्गों में से एक बन गया था। ब्राह्मण धर्म और बौद्ध धर्म का प्रभाव दक्षिण पूर्व एशियाई देशों और चीन के साथ हिंद महासागरीय व्यापारिक नेटवर्क को जोड़ने में एक महत्वपूर्ण कारक बना।

[2] स्व-उपभोग के लिए किया गया उत्पादन।

13.6 महत्वपूर्ण व्यापारिक केंद्र

दिल्ली शहर का अस्तित्व व्यापार और वाणिज्य के बिना असंभव था। इब्न बतूता दिल्ली को भारत के विशालतम और बड़े शहर के रूप में बताता है। दौलताबाद आकार और महत्व में दिल्ली के साथ प्रतिस्पर्धा कर सकता था। अन्य महत्वपूर्ण शहर जो सल्तनत कालीन व्यापार और वाणिज्य के कारण संपन्न हुए वह थेः लाहौर, मुल्तान, अनहिलवाड़ा, कैम्बे, कड़ा और लखनौती। शहरों को कृषि उत्पादों की निरंतर आपूर्ति की आवश्यकता होती थी। इसके परिणामस्वरूप ग्रामीण इलाकों से शहरों में अनाज के व्यापार में वृद्धि हुई। *बंजारा* समुदाय ने नगरीय केंद्रों में अनाज के परिवहन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इब्न बतूता अमरोहा से दिल्ली 3,000 बैलों की पीठ पर 30,000 मन अनाज का परिवहन होने का उल्लेख करता है। हालांकि शहरों के पास गाँव को देने के लिए कुछ खास नहीं होता था। सल्तनत ने राजमार्गों, *सरायों* और धर्मशालाओं के निर्माण में मदद की। बंगाल में, गियासुद्दीन खलजी ने बाढ़ से बचाव के लिए सड़कों को सुरक्षित बनाने के लिए लंबे तटबंध बनाए। समुद्री माल की माँग ज्यादातर शाही घरानों के कारण थी।

सबसे महत्वपूर्ण समुद्रतटीय शहरों में कैम्बे था। मार्कोपोलो इस शहर को चंदन, और सोने और चाँदी की कशीदाकारी वाली शयन-चादरों जैसी वस्तुओं के लिए सबसे महत्वपूर्ण विनिर्माण केंद्रों में से एक के रूप में वर्णित करते हैं। बड़ी मात्रा में नील का निर्माण किया जाता था और वहाँ सूती कपड़े के साथ-साथ ऊन मिश्रित सूती कपड़ों की बहुतायत थी। पशुओं की खाल से बने कपड़े निर्यात किए जाते थे और बदले में कैम्बे को सोना, चाँदी, ताँबा और *तूतिया* [3] प्राप्त होता था। अल-इदरीसी उल्लेख करते हैं कि, नील और भारतीय गन्ने की आपूर्ति कैम्बे को आसपास के क्षेत्रों से की जाती थी। 12वीं शताब्दी में चावल, गेहूँ और भारतीय गन्ने कैम्बे की मुख्य निर्यात की वस्तुओं के रूप में उल्लिखित किए गए हैं। हालांकि, हर प्रकार और हर देश का माल इस शहर में पाया जाता था। कैम्बे के व्यापारिक विकास के सबसे महत्वपूर्ण कारकों में से एक उसके समृद्ध पृष्ठ-क्षेत्र (hinterland) थे।

13.7 ऋण, बैंकिग और व्यापार

भारत में, प्रमुख व्यापारी न केवल व्यापार में हिस्सा लेते थे बल्कि वह मुद्रा बदलने और वित्त गतिविधियों में भी हिस्सा लिया करते थे। लंबी दूरी का व्यापार वित्तपोषित था और जोखिम के खिलाफ उसका बीमा भी किया जाता था। बैंकरों या *सर्राफों* ने अपनी स्वयं की *हुंडियों* के माध्यम से धन का संचार और विशेष रूप से लंबी दूरी के व्यापार और अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्य को भी वित्तपोषित किया। *हुंडियों* से धन की आसान उपलब्धता और एक अत्यधिक विकसित वित्तीय प्रणाली का संकेत प्राप्त होता है। *हुंडियों* का प्रयोग इतना अधिक विस्तृत था कि अहमदाबाद के बाज़ार में लगभग सभी वाणिज्यिक लेन-देन, व्यापारी इस वाणिज्यिक पत्र के माध्यम से करते थे। हस्तशिल्प बाज़ार में, व्यापारिक पूँजी के विकास के परिणामस्वरूप *दादनी* प्रणाली (putting-out-system) के माध्यम से कारीगरों को नियंत्रण में लाया गया। अग्रिम नकद धन-राशि और कच्चे माल, दोनों को देना इस आर्थिक प्रणाली की स्थापित प्रथाएँ थीं। कागज के उत्पादन ने सरकारी कार्यालयों में अभिलेख-रक्षण (record-keeping) और हुंडी के व्यापक उपयोग को संभव बनाया।

इस क्षेत्र की मुद्रा प्रणाली की स्थिरता ने व्यापार और वाणिज्यिक गतिविधियों में वृद्धि की। 12वीं और 13वीं शताब्दी में, चालुक्य कालीन चाँदी के मिश्र धातु के सिक्के – *पोरुथ द्रम्मा या बाद में विसालप्रिया और भीमप्रिया द्रम्मा* – मालवा, सिंध, राजस्थान, महाराष्ट्र और यहां तक कि अफगानिस्तान में बड़ी मात्रा में पाए गए। मध्य और पश्चिमी भारत में बड़ी मात्रा में इसकी उपस्थिति गुजरात के उन क्षेत्रों के साथ व्यावसायिक संबंधों का द्योतक है। गुजरात के तुर्क आक्रमण के पश्चात्, दिल्ली *तनका* की शुरुआत हुई। इसकी जगह गुजराती मुद्रा *महमूदी* ने ले ली, जो 15वीं शताब्दी से सबसे व्यापक रूप से स्वीकृत और क्षेत्र की स्थिर मुद्रा बन गई।

सल्तनत काल के दौरान, बढ़ते हुए शहरीकरण और वाणिज्यिक विस्तार के साथ दलालों के महत्व में वृद्धि हुई थी। बिचौलियों और दलालों द्वारा अक्सर माल की कीमतों में वृद्धि की आलोचना की जाती

[3] यह जस्ता या सुरमा से बना एक खनिज होता हैं, जो ईरान के पूर्वी भाग में पाया जाता है। इसका उपयोग काजल बनाने में किया जाता था, जिसका प्रयोग हिंदुस्तान की महिलाएँ करती थीं।

थी। अलाउद्दीन खलजी ने बिचौलियों या दलालों की आय नियंत्रण में करने की कोशिश की। बरनी द्वारा अलाउद्दीन के इस कृत्य की प्रशंसा की गई। 14वीं शताब्दी में, बड़ी मात्रा में दिल्ली सुल्तानों के लिए विलासितापूर्ण वस्त्र मध्य एशिया से आयात किए जाते थे। चीनी, रेशम और चीनी मिट्टी के बरतन भी शाही घराने में काफी माँग में थे।

12वीं से 15वीं शताब्दी के दौरान भारतीय धातुकर्म उद्योग सुस्थापित हो चुके थे। काहिरा-गनीज़ा के यहूदी व्यापारी उल्लेख करते हैं कि, दक्खन काँस्य और पीतल उद्योग ने भारत में ताँबे और सीसा के आयात को प्रेरित किया, अदन में भी ग्राहकों के लिए विशिष्ट बर्तन बनते थे जिनके टूटे हुए हिस्सों को भारत में पुनर्निर्माण के लिए भेजा जाता था। दक्खन ने मध्य पूर्व के लिए बड़े पैमाने पर लोहे और स्टील का निर्यात किया। गुजरात का विनिर्माण उद्योग भी बहुत अच्छी तरह से विकसित था। *मिरात* का दावा है कि, शस्त्रों में प्रसिद्ध *सिरोही* तलवारें और तीर सबसे अच्छे यहाँ बनते थे, जिनका मुगलों और ईरानियों द्वारा भी प्रयोग किया जाता था।

13.8 व्यापारी और व्यापारिक समुदाय

इस अवधि के दौरान व्यापार में लिप्त प्रमुख समुदायों में जैन मूल के मारवाड़ी और गुजराती शामिल थे। जैन समुदाय वर्षों से कुछ व्यापारिक मार्गों और नेटवर्क पर एकाधिकार प्राप्त करने में सक्षम रहे। मुस्लिम बोहरा व्यापारियों, मुल्तानियों और खुरासानियों ने लंबी-दूरी के स्थल व्यापार में एक प्रमुख भूमिका निभाई। अमीर बनिया व्यापारियों के लिए बरनी *साह* शब्द का उपयोग करता है, जो शायद प्रारम्भ में फारसी *शाह* (राजा) का एक रूपांतरण था और इसलिए एक सम्मानजनक शब्द था। इसलिए यह उसके द्वारा उन शीर्षकों के मध्य रखा गया जिन्हें अमीर हिंदुओं द्वारा उपयोग किया जाता था जैसे *राय, राणा, ठाकुर, मेहता* और *पंडित*। इब्न बतूता कहता है कि, दौलताबाद के हिंदू साहू व्यापारी बहुत हद तक मिस्र के करीमी व्यापारियों की तरह थे। मिस्र के व्यापारियों से भिन्न वे एक दूसरे के साथ व्यापार और वाणिज्यिक मामलों में सहयोग किया करते थे।

अमीर खुसरो इस पूरे वर्ग के आलोचक थे, उन्होंने 1283-1284 में इस वर्ग से संबंधित विभिन्न कार्मिकों की व्याख्यात्मक सूची प्रदान कीः *बाज़ारी* (बाजार-संचालक, ईमानदारी और विश्वास से परे); *सौदागर* (व्यापारी, लाभ-खोर); *बज़्ज़ाज़* (कपड़ा बेचने वाले, निष्कपटता से विन्मुख); *बक्काल* (अनाज व्यापारी); *सर्राफ* (मुद्रा परिवर्तक); *ज़रगर* (सुनार), वे सभी वजन के अपने पैमाने में हेर-फेर करते थे; और *मुहतखिर* (जमाखोर, सोने के दाम पर चावल बेचने वाले। अमीर खुसरो की सूची पूर्ण नहीं थी और उनका ऐसा कोई इरादा भी नहीं था। एक प्रमुख समूह जिसका उल्लेख करने में वह विफल रहे वह था निचले स्तर के *कारवानी*, जो बाद के समय में बंजारों के रूप में जाने गए। अनाज के परिवहन के उनके तरीके ने यह आवश्यक कर दिया कि वे एक खानाबदोश जीवन जिएँ। उन्हें नियंत्रण में रखने के लिए अलाउद्दीन खलजी ने यह आवश्यक समझा कि, उनके मुखिया (*मुकद्दम*) के परिवारों को अपनी मवेशियों के साथ यमुना के किनारे बसाने के लिए मजबूर किया जाए।

कई यूरोपीय व्यापारियों और वणिकों के विपरीत भारतीय व्यापारी या वणिक अपने राजनीतिक या सैन्य समर्थन पर निर्भर नहीं थे। समृद्ध और शक्तिशाली व्यापारी जैसे गामेल अल-दीन इब्राहिम टीबे ने एक सौ जहाजों का बेड़ा संगठित किया, जिसने दक्षिण भारत और सुदूर पूर्व की ओर यात्रा की। वास्तुपाल और तेजपाल के नाम गुजरात में व्यापारियों में प्रसिद्ध थे। तमिलनाडु और बंगाल में चेट्टी और मरक्कार भी प्रसिद्ध थे।

व्यापारियों और वणिकों के अक्सर अपने *संघ* (श्रेणी) हुआ करते थे, जो निगम या संघ के रूप में काम किया करते थे। 11वीं और 12वीं शताब्दी के कुछ समकालीन ग्रंथों में उल्लिखित शब्द श्रेणी अक्सर उन लोगों के संगठन से जुड़ा होता है जो एक ही पेशे में भागीदार थे। शब्द *नैगम, कारवानी* व्यापारियों या वे व्यापारी जो विदेशी व्यापार में लिप्त थे उनके संघ को संदर्भित करता है। शब्द *मंडलम्* या *ममंडलिका* व्यापारियों के संघ को संदर्भित करता है। यह सारे संघ अक्सर व्यापारियों के लिए सूत के बदले में नकद प्रदान करने में मदद करते थे (**उप-भाग 13.2.2** भी देखें)।

हिंद महासागरीय व्यापारिक नेटवर्क में यूरोपियों का आगमन

भारत के पश्चिमी तट पर पहुँचने के बाद यूरोपियों ने तीन प्रमुख भौगोलिक क्षेत्रों पर ध्यान केंद्रित

किया, जिनमें उस समय समुद्री व्यापार करने की उच्चतम क्षमता थी। एक तरफ, यूरोपियों ने केरल के प्रमुख मसाला बंदरगाहों पर कब्जा कर लिया, विजय या शांति संधियों द्वारा, ताकि वे यूरोप के साथ होने वाले अत्यधिक लाभदायक मसाला व्यापार को नियंत्रित करने के अपने उद्देश्य में सफल हो सकें। दूसरी ओर, उन्होंने मौजूदा समुद्री व्यापार केंद्रों पर अपना नियंत्रण किया जिसने उन्हें पृष्ठ क्षेत्र के विभिन्न प्रकार के निर्मित वस्त्रों के लिए समुद्री बिक्री केन्द्र प्रदान किए।

पश्चिम भारत में गुजरात के समुद्री राज्य को पुर्तगालियों की नौसैनिक शक्ति का सामना करना पड़ा, जबसे उन्होंने लाल सागर और मिस्र के जरिए होने वाले थोक-व्यापार की नाकाबंदी करना प्रारंभ किया था और हिंद महासागर में होने वाले व्यापार पर एकाधिकार करने का प्रयास किया। पुर्तगाली मौजूदा व्यापारी नेटवर्क को नष्ट करने में असमर्थ रहे और न ही उन्होंने गंभीरता से उसके पैटर्न को बदलने का प्रयास ही किया। हालांकि, अरब सागर के तटीय क्षेत्रों पर होने वाले व्यापार में पुर्तगालियों ने हस्तक्षेप किया था जिसका नकारात्मक प्रभाव विशेष रूप से अरब और अल-करीमी व्यावसायिक हितों पर पड़ा, जो अंततः बिखर गए। मालाबार के मापिला और गुजरातियों ने अल-करीमी और अरब व्यापारियों की जगह लेना प्रारंभ कर दिया था। घटनाक्रम के इस नए मोड़ पर कालीकट, जो पुर्तगालियों के वाणिज्य विस्तार के प्रारंभिक वर्षों में उनके आक्रमण के निशाने पर था क्योंकि इस क्षेत्र की लाल सागर-वेनिस व्यापार के लिए संसाधन जुटाने में निर्णायक भूमिका थी, की कीमत पर कैम्बे की एक निर्यात क्षेत्र के रूप में भूमिका में वृद्धि हुई।

16वीं शताब्दी के शुरुआती वर्षों में पुर्तगालियों ने क्षेत्रीय व्यापारियों और वणिकों पर बल प्रयोग की नीति का पालन किया। पुर्तगालियों और क्षेत्रीय व्यापारियों के मध्य दुश्मनी का गुजरात की अर्थव्यवस्था पर एक हानिकारक प्रभाव पड़ा। यह प्रवृत्ति पुर्तगालियों द्वारा कुछ विशेष व्यापारिक मार्गों और विशेष माल के व्यापार पर एकाधिकार करने की नीति के कारण बढ़ गई थी। पुर्तगालियों की व्यापारिक प्रणाली लुसितानियान्स (Lusitanians) के लिए एकाधिकार व्यापार और एशियाई लोगों के लिए लाइसेंस प्राप्त (*कार्टाज*-आधारित) व्यापार की धारणाओं पर आधारित थी। *कार्टाज़* या पास का उपयोग न केवल पुर्तगाली राजा (Crown) के लिए आरक्षित वस्तुओं के परिवहन में बाधा डालने के लिए किया जाता था, विशेष रूप से मसाले और यात्रा करने वाले तुर्क और अबीसीनियाई मुसलमानों के परिवहन में बाधा डालने के लिए, बल्कि भारतीय व्यापारियों को एक या उससे अधिक पुर्तगाली तटों पर रोकने और शुल्क का भुगतान करने के लिए भी किया जाता था। हालांकि, यूरोपियों ने हिंद महासागरीय व्यापारिक नेटवर्क के भीतर कोई संरचनात्मक परिवर्तन नहीं लाया। नेटवर्क के पारंपरिक संबंध अस्तित्व में बने रहे और हिंद महासागरीय क्षेत्र का मुख्य व्यापार इन संबंधों पर निर्भर रहा (यूरोपीय व्यापारिक कंपनियों के संदर्भ में विस्तृत चर्चा के लिए हमारा पाठ्यक्रम **बीएचआईसी-109** देखिए)।

बोध प्रश्न-2

1) 13वीं-15वीं शताब्दी के दौरान समुद्री व्यापार के नेटवर्क की चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

2) ऋण और बैंकिंग प्रथाओं ने व्यापार को किस प्रकार से सुविधाजनक बनाया ?

.....

.....

.....

3) 13वीं-15वीं शताब्दी के दौरान समुद्री व्यापार में संलग्न प्रमुख व्यापारिक समुदायों की सूची प्रदान कीजिए।

.....

.....

.....

4) 13वीं-15वीं शताब्दी के दौरान प्रमुख व्यापारिक शहरों का, जिन्हें समुद्री व्यापार से लाभ प्राप्त हुआ था, वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

13.9 सारांश

इस इकाई में की गई चर्चा के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि दिल्ली सल्तनत के अधीन अंतर्देशीय व्यापार एक महत्वपूर्ण गतिविधि और राजस्व का स्रोत था। सुल्तानों ने व्यापारियों को संरक्षण और सुरक्षा प्रदान की, कई बार बाज़ार को नियंत्रण में रखने के लिए कठोर नीतियाँ भी अपनाईं गईं। नए शहरों की स्थापना करते समय व्यापारियों को खुश तथा संतुष्ट रखना, जैसा कि जलालुद्दीन खलजी द्वारा किलोघरी के संदर्भ में पाया गया, एक प्रथा थी जिसका पालन दिल्ली सल्तनत के अधीन भी किया जाता था। व्यापारियों और उनके माल पर कई तरह के कर लगाए जाते थे। उन्हें प्रमुख प्रशासनिक पदों पर नियुक्त किया जाता था। उन्हें सल्तनत कालीन समाज में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था और उन्हें अभिजात वर्ग द्वारा भी प्रोत्साहन प्राप्त था। कई बार, उन्हें अधिकारियों के उत्पीड़न का सामना करना पड़ता था।

राजनीतिक स्थिरता, और सड़कों और मार्गों की सुरक्षा किसी भी शासनकाल में संपन्न व्यापार और वाणिज्य के लिए आवश्यक आधार थीं। दिल्ली सल्तनत ने इन स्थितियों को उनके व्यापारी वर्ग के लिए स्थापित करने और बनाए रखने की कोशिश की। सुल्तान जैसे बलबन, अलाउद्दीन खलजी और ग़ियासुद्दीन तुगलक ने अपने शासनकाल के तहत महत्वपूर्ण व्यापार मार्गों को संरक्षण देने के लिए अनेक कदम उठाए। सभी समकालीन और लगभग समकालीन स्रोत सुल्तान फिरोज़ शाह के शासनकाल में *कारवाँ* मार्गों की सुरक्षा और व्यापारियों की सामान्य समृद्धि की प्रशंसा करते हैं। 15वीं शताब्दी के दौरान यात्रियों ने एक व्यापारिक वर्ग की संपन्नता के बारे में अपने वृत्तांतों में वर्णन किया है। अलाउद्दीन खलजी द्वारा अपनाए गए बाज़ार नियंत्रण उपायों को व्यापारियों के खिलाफ अपनाई गई नीति के तौर पर देखने की जगह उन्हें बाज़ार-तंत्र को कारगर बनाने के रूप में देखा जाना चाहिए। हालांकि व्यापारियों पर राज्य के अधिकारियों द्वारा किए गए उत्पीड़न के मामले इस अवधि के दौरान पूरी तरह अनुपस्थित नहीं थे, लेकिन कुल मिलाकर अपनाई गई नीति प्रोत्साहन और संरक्षण की थी।

व्यापार का एक समृद्ध समुद्री नेटवर्क था और भारतीय व्यापारियों की पश्चिम एशिया, पूर्वी अफ्रीका और दक्षिण-पूर्व एशिया और चीन के साथ सघन व्यापारिक गतिविधियाँ थीं। अरब व्यापारी बड़े पैमाने पर पश्चिम एशिया और भारत के पश्चिमी तट के मध्य हिंद महासागरीय व्यापार तक सीमित थे। बंगाल की खाड़ी के समुद्री तट का संबंध मलक्का और दक्षिण चीन तक फैला था। काहिरा-गैनिज़ा दस्तावेज यहूदी व्यापारियों की बंगाल की खाड़ी तक उपस्थिति का प्रमाण देते हैं। चीन के समुद्री जहाजों (Chinese junks) की एक नियमित गतिविधि कालीकट तक विद्यमान थी। 13वीं से 15वीं शताब्दी के भारतीय व्यापार की मुख्य विशेषता उसका अनुकूल भुगतान-संतुलन था।

13.10 शब्दावली

बक्काल (Baqqal)	इस शब्द का प्रयोग भारत में मुसलमान लेखकों द्वारा बनिया जाति के सदस्यों को इंगित करने के लिए किया जाता था
बोहरा (Bohras)	गुजरात का मुस्लिम व्यापारिक समुदाय
काहिरा-गैनिजा दस्तावेज (Cairo-Geniza Documents)	यह लगभग 400,000 यहूदी दस्तावेजों का संग्रह है जो बेन एज़्रा आराधनालय (synagogue), फुस्टैट (पुराना काहिरा) के गैनिज़ा (स्टोर-रूम) में पाया गया था

कारवानी (Karwanis)	अनाज-व्यापारी जो पुनः दो भागों में विभाजित थेः *सौदागरान-ए कारवानी* – परिवहन व्यापारी और *सौदागरान-ए बाज़ारी* – बाज़ार के व्यापारी
लिट्टोरल (Littoral)	समुद्र के किनारे की भूमि
मुहताकिरान (Muhtakiran)	इसका शाब्दिक अर्थ है, जमाखोर
सर्राफ (Sarraf)	मुद्रा परिवर्तक

13.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1) देखें उप-भाग 13.2.2
2) देखें उप-भाग 13.2.1
3) देखें भाग 13.2
4) देखें उप-भाग 13.2.3
5) देखें भाग 13.3

बोध प्रश्न-2

1) देखें भाग 13.4
2) देखें भाग 13.7
3) देखें भाग 13.8
4) देखें भाग 13.6

13.12 संदर्भ ग्रंथ

चौधरी, के. एन., (1990) *एशिया बिफोर यूरोपः इकॉनमी एंड सिविलाइज़ेशन ऑफ इंडियन ओशन फ्रॉम द राइज ऑफ इस्लाम टू 1750* (कैंब्रिजः कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस).

चौधरी, के. एन., (1985) *ट्रेड एंड सिविलाइज़ेशन इन द इंडियन ओशनः ऐन इकॉनामिक हिस्ट्री फ्रॉम द राइज ऑफ इस्लाम टू 1750* (कैंब्रिजः कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस).

डिग्बी, साइमन, (1971) *वॉर-हॉर्स एंड एलीफैंट्स इन द दिल्ली सल्तनतः ए स्टडी ऑफ मिलिट्री सप्लाईज़* (ऑक्सफोर्डः ओरिएंट मोनोग्रास).

डिग्बी, साइमन, (1982) 'मैरिटाइम ट्रेड ऑफ इंडिया', तपन रेचौधरी एवं इरफान हबीब (संपादित) *द केम्ब्रिज इकॉनामिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया*, भाग-I (नई दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).

हबीब, इरफान, (2011) 'टाउन्स एंड ट्रेड', डी. पी. चट्टोपाध्याय (संपा) *हिस्ट्री ऑफ साइंस, फिलासफी एंड कल्चर इन इंडियन सिविलाइज़ेशनः इकॉनामिक हिस्ट्री ऑफ मिडिवल इंडिया, 1200-1500*, खंड 8, भाग 1 (नई दिल्लीः पियरसन).

हैदर, नजफ, (1998) 'इंटरनेशनल ट्रेड इन प्रेशियस मेटल्स एंड मॉनेटरी सिस्टम्स ऑफ मिडिवल इंडियाः 1200-1500 ए.डी', *द प्रोसीडिंस ऑफ इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस,* भाग 59: 237-254.

हैदर, नजफ, (2011) 'फॉरेन ट्रेड ऑफ इंडिया', डी. पी. चट्टोपाध्याय (संपा.) *हिस्ट्री ऑफ साइंस, फिलासफी एंड कल्चर इन इंडियन सिविलाइज़ेशनः इकॉनामिक हिस्ट्री ऑफ मिडिवल इंडिया, 1200-1500,* खंड 8, भाग 1 (नई दिल्लीः पियरसन).

जानकी, वी. ऐ., (1980) '*द कॉमर्स ऑफ कैम्बे फ्रॉम द अर्लीएस्ट पीरियड टू द नाइन्टीन्थ सेंचुरी*', ज्योग्राफी सीरीज नंबर 10 (बड़ौदाः द महाराजा सयाजीराव यूनिवर्सिटी ऑफ बडौदा).

पलात, रवि अरविंद एवं वॉलरस्टाइन, इम्मानुअल, (1999) 'ऑफ व्हाट वर्ल्ड सिस्टम वाज़ प्री-1500 ''इंडिया'' ए पार्ट', सुशील चौधरी एवं माइकल मोरीनो, (संपा.) *मरचैंट्स, कंपनीज़ एंड ट्रेडः यूरोप एंड एशिया इन द अर्ली मॉडर्न एरा* (कैंब्रिजः कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस).

प्रकाश, ओम, (2011) (संपा.) *हिस्ट्री ऑफ साइंस, फिलासफी एंड कल्चर इन इंडियन सिविलाइज़ेशनः द ट्रेडिंग वर्ल्ड ऑफ द इंडियन ओशन, 1500-1800*, खंड 3, भाग 7, (दिल्लीः पियरसन).

प्रसाद, पुष्पा, (2011) 'द इकोनॉमी ऑफ गुजरात इन द थर्टीन्तन्थ सेंचुरी', डी. पी. चट्टोपाध्याय (संपा.) *हिस्ट्री ऑफ साइंस, फिलासफी एंड कल्चर इन इंडियन सिविलाइज़ेशनः इकॉनामिक हिस्ट्री ऑफ मिडिवल इंडिया, 1200-1500*, खंड 8, भाग 1 (नई दिल्लीः पियरसन).

क़ैसर, ए. जान, (1974) '*द रोल ऑफ ब्रोकर्स इन मिडिवल इंडिया*', *द इंडियन हिस्टॉरिकल रिव्यू*, भाग 1, नवंबर 2, सितंबरः 220-222.

रे, अनिरूद्ध एवं अरासारत्नम्, सिन्नप्पा, (1994) *मसूलीपट्टनम एंड कैम्बेः ए हिस्ट्री ऑफ टू पोर्ट टाउन्स 1500-1800* (नई दिल्लीः मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड).

रेचौधरी, तपन एवं, इरफान हबीब, (1982) (संपादित) *द कैंब्रिज इकोनामिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया*, खंड 1: *लगभग 1200-1750* (लंदनः कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस).

रिचर्ड्स, जॉन एफ., (1965) 'द इकोनामिक हिस्ट्री ऑफ द लोदी पीरियडः 1451-1526', *द इकोनामिक एंड सोशल हिस्ट्री ऑफ द ओरिएंट*, भाग 8, नवंबर 2, अगस्तः 47-67.

शेख, समीरा, (2010) *फोर्जिंग ए रीजनः सुल्तान्स, ट्रेडर्स एंड पिलग्रिम्स इन गुजरात 1200-1500* (नई दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).

सिद्दीकी, एम. यासीन मज़हर, (1975) 'द मरचैंटस एंड द दिल्ली सल्तनत (थर्टीन्तन्थ एंड फौर्टीन्थ सेंचुरीज)', *प्रोसीडिंग्स ऑफ द इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस* (अलीगढ़ः अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी).

13.13 शैक्षणिक वीडियो

दिल्ली सल्तनतः इंडस्ट्री, ट्रेड एंड कॉमर्स | विद्या मित्र
https://www.youtube.com/watch?v=TCbkw8Gl0Ag

इंट्रोडक्शन ऑफ मैरिटाइम ट्रेड ऑफ इंडिया | विद्या मित्र

https://www.youtube.com/watch?v= ApkfpQyTY_4&list=PL_a1TI5CC9 RHAwe DRQ4pPwiQq4SWXZB1-&index=32

मैरिटाइम कांटेक्ट्स ऑफ ईस्ट कोस्ट ऑफ इंडिया विद द रेड सी, द परशियन गल्फ | विद्या मित्र

https://www.youtube.com/watch?v=jSa3HK11 WMo&list= PL_a1TI5CC9RHAwe DRQ4pPwiQq4SWXZB1-&index=33

टॉकिंग हिस्ट्री |11 | दिल्लीः द ट्रेड रूट्स ऑफ कैपिटल | राज्यसभा टी वी
https://www.youtube.com/watch?v=UDMM20q2kK4

सोर्सेस फॉर द स्टडी ऑफ इकोनामिक हिस्ट्री ऑफ मिडिवल इंडिया | विद्या मित्र
https://www.youtube.com/watch?v=88XQIi_wKxE&list=PL_a1TI5CC9RHAwe DRQ4pPwiQq4SWXZB1-&index=3